



श्रीजैन सत्य प्रकाश



ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SHREE MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA

Koba, Gandhinagar - 382 007.

Ph. : (079) 23276252, 23276204-05

Fax : (079) 23276249

वर्ष ३

अंक ६

क्रमांक ३३

तंत्री, श्रीमनलाल गोकणदास शाह

श्री जैन सत्य प्रकाश

(मासिक पत्र)

वि-५-५-६-२१-न



१ श्री सिद्धचक्र लघु स्तोत्र	: आ. म. श्री. विजयपद्मसूरिजी	: ३१७
२ श्री नेमिनाथ स्तोत्र	: मु. म. श्री. वाचस्पतिविजयजी	: ३१८
३ दिगंबर शास्त्र कैसे बने ?	: मु. म. श्री. दर्शनविजयजी	: ३१९
४ समीक्षाभ्रमाविष्करण	: आ. म. श्री विजयलावण्यसूरिजी	: ३२१
५ पूरुष्यंद्रायार्थ के यंद्रायार्थ	: श्री. सारभाष्ट भण्डिवाल नवाय	: ३२५
६ श्रीयशस्वत्सागर अने स्याद्वादमुक्तावली	: प्रो. हीरालाल रसिकन्नात्र कापडिया	: ३२७
७ जिनालयनी भांडनी	: मु. मु. श्री. दर्शनविजयजी	: ३३०
८ महाकवि धनपावनु आदर्श जीवन	: मु. म. श्री. सुशोभविजयजी	: ३३३
९ भारतनां जैन युद्धाभित्ति	: श्री. नाथानाल छगनलाल शाह	: ३३७
१० धर्मप्रचारनो प्रयत्न	: P	: ३४०
११ पंच महावननी पचीस भावना	: श्री. मोहननात्र दीपयंद योक्ती	: ३४४
१२ सात प्रकारनी वृद्धि	: आ. म. श्री. विजयपद्मसूरिजी	: ३४७
१३ कोचर व्यवहारीका समय-निर्णय	: श्री. अजरचंदजी	
	भंवरलालजी नाहटा	: ३५०
१४ स्वाध्याय (ऐतिहासिक टुंका प्रसंगे) : २.		: ३५४
समाचार.		३५६नी सामे

लवाजम

स्थानिक १-८-०

पहारागाम २-०-०

छूटके अंक ०-३-०

सरनामुं पहलायाना समाचार दरेके अंग्रेजी भडिनानी

तेरभी तारीफ पहलां लफी जशाववा.

मुद्रक : चंद्रशंकर उमाशंकर शुक्ल, प्रकाशक : श्रीमनलाल जोकणदास शाह, मुद्रणस्थान :
युगधर्म मुद्रणालय सवापोस केस रोड अमहावाह, प्रकाशनस्थान : श्री जैनधर्म
सत्यप्रकाशक समित कार्यालय, जेशिंगेबाईनी वाडी, धीकांटा, अमहावाह.

गमो त्थु णं भगवओ महावीरस्स

सिरि रायनयरमज्जे, संमीलिय सव्वसाहुसंमइयं ।
पत्तं मासियमेयं, भव्वाणं मग्गयं विसयं ॥ १ ॥

श्री जैन सत्य प्रकाश

पुस्तक ३

: कर्मांक ३३ :

अंक ८

विक्रम संवत् १९६४ :
श्रेष्ठ १६१

वीर संवत् २४१४
शुक्रवार

: संन १६३८
अप्रिल १५

॥ सिद्धचक्र लघुस्तोत्रम् ॥

कर्त्ता—आचार्य महाराज श्रीमद् विजयपद्मसूरिजी

(गतांकथी पूर्ण) ॥ आर्यावृत्तम् ॥

समणोवासगसुत्ते, वण्णियभावे सुमाहणे पक्खिवे ॥
णिज्जामगमग्गदए, भावरुहंते व ज्ञापमि ॥ २५ ॥
णियकम्मगेत्तहणे, ज्ञाणाईए पसन्नमुहकमले ॥
कल्लाणवण्णवण्णे, भावा वंदामि अरहंते ॥ २६ ॥
अञ्चंतात्तित्थयरे, पयत्थभावं मणंसि भाषेता ॥
सञ्चानंदसरूवा, खिप्पं भविया हवंति मुया ॥ २७ ॥
उवयारित्तसहावा, जे पयपणने पयासिया पढमा ॥
णे पुज्जत्तित्थणाहा, सरियव्वा चित्तथेज्जेण ॥ २८ ॥
मणुयत्तं पुण्णेणं, णवपयसंसाहणं च पुण्णेणं ॥
लब्भइ ता पढमदिणे, अरुहंताराहणं कुज्जा ॥ २९ ॥
गुणलक्खा विहिमाणो, अमियविहाणप्पवित्तिपरिमुइओ ॥
सिरिसंघो सिरिनिलओ, मंगलमाला लहेउ सया ॥३०॥
अरिहंतञ्चणज्ञाणा, वंदणमणेहि विग्घविह्वणं ॥
उवसग्गवग्गविलओ, णियमा चित्तंबुउल्लासो ॥३१॥
गुणणंदणिहिंदुसमे, सिरिगोयमकेवलत्तिवरदियहे ॥
पहुधम्मपुण्णरसिए, जइणउरीरायणयरम्मि ॥ ३२ ॥
सिरिसिद्धचक्रसंगं, थुत्तं तित्थेसराण पढममिणं ॥
सुग्गहियक्खाण महो-वयारि गुरुणेमिसुरीणं ॥ ३३ ॥
सीणेणं पोम्मेणं, रइयं सिसुचंदकंतपढणट्टं ॥
सिद्धाईत्थवणाइ, अट्ट करिस्सायि सेसाइ ॥ ३४ ॥

॥ श्रीनेमिनाथ भगवस्तोत्रम् ॥

कर्ता—मुनिराज श्री वाचस्पतिविजयजी

[पृथ्वील्लक्षा गीयते]

स्मृतोऽपि विततातपं रहयतीन्दुकल्पो विभुः,
 विलोकनगतो मुदा यतिरिपून्प्रभाससङ्गतः ।
 मनो मम सुधाकरे विकचपद्मलीलाकरे,
 सुनेमिमुखचन्दिरे चिरगतं द्विरेफायताम् ॥ १ ॥

नमामि जगदालयं विततदेवमौलिधय—
 त्रखेन्दुकमलाकरं समुदितं पयोमुक्प्रभम् ।
 सदा मुदनदप्रदं विशदनीतिसम्भावुकं,
 मुदा सुकृतनेमिगं विकलनेमिनाथं प्रभुम् ॥ २ ॥

समस्तजनवन्दितं सुरनरेशसम्पूजितं,
 नृशंसदुरितावली व्रजति दूरदेशं दुतम् ।
 अमन्दसुखदाकं विततकल्पचिन्तामणिं,
 शिवाङ्गजजिनेश्वरं शिवमहीप्रधानं स्तुवे ॥ ३ ॥

समुद्रविजयात्मजं शुभशिवोदरालंकृतं,
 समुद्रमहिमा महोभुविगतन्नु सन्यकृतिम् ।
 सदा जलनिवासनं कमलमेतिरूपान्मुहुः,
 स्मरामि शिवकारणं निखिलतेजसां संभवम् ॥ ४ ॥

भजामि शिशुताश्रयन्निखिलशीलसंशालिनं,
 सुशंखशुभलाच्छितं मुरहरादिसंप्रार्थितम् ।
 चकोरगतिकारणं भजति यापि राजीमती,
 तमेव सततं भवे शुभभवाय संभाविनम् ॥ ५ ॥

शचीपतिरमुं जिनं समवलोक्य पुण्यात्मकं,
 स्मरंहरप्रभाहरं ननु नियोजितोन्यकृतौ ।
 प्रमुक्तशरपञ्चकं समवधूय मारन्नु य—
 श्रकार शिखरं क्षणात् सुकृतभूमिमीशं भजे ॥ ६ ॥

स्तवीमि सततं सुधान्नववचोवरं भासुरं,
 निनाय सुषमाकलं समयमत्र संदीक्षितम् ।
 सुरैवतगिरेर्जनो भजति सौम्य कैवल्यगं,
 सुपद्ममपरं कृपा यदि यमेव तस्यैव सा ॥ ७ ॥

दिगम्बर शास्त्र कैसे बने ?

लेखक—मुनिराज श्री दर्शनविजयजी

(गतांकसे क्रमशः)

प्र० १९—भट्टारक सोमसेन

दिगम्बर समाजमें गृहस्थधर्मक निरूपणके निमित्तके भिन्न भिन्न त्रिवर्णाचारोंका निर्माण हुआ है। उसमें भट्टारक सोमसेनजीका त्रैवर्णिकाचार बहूत प्रसिद्ध है, जो छपचुका है। इसकी रचना किसके आधारपर हुई है उस विषयकी सप्रमाण विचारणा “ग्रंथसर्जन” विभागमें कि जायगी, यहां तो सिर्फ इतना ही बताना चाहता हूं कि भट्टारकजोने ग्रंथ-निर्माण कैसे किया। और उसके लिये दिगम्बर विद्वानोंका क्या मत है।

१—श्रीयुत पं. पन्नालालजी सोनी लिखते हैं कि—

“ग्रन्थ (त्रैवर्णिकाचार) की प्रमाणतामें भी हमें कुछ संदेह नहीं होता। प्रतिपादित विषय जैनमतके न हों और उनसे विपरीत शिक्षा मिलती हो तो प्रमाणतामें संदेह हो सकता है। ग्रन्थकी भूल भित्ति आदिपुराण परसे खड़ी हुई है। जिनका आधार उन्होंने लिया है उनके ग्रन्थोंमें भी वे विषय पाये जाते हैं। किंबहुना इस ग्रंथके विषय ऋषिप्रणीत आगममें कहीं संक्षेपसे और कहीं विस्तार से पाये जाते हैं। अतएव हमें तो इस ग्रंथमें न अप्रमाणता ही प्रतीत होती है और न आगमविरुद्धता ही। परन्तु जो लोग वर्णाचार जैसे विषयोंसे अनभिज्ञ हैं, उनके पालनमें असमर्थ हैं, उनकी परंपराका जिनमें लेश भी नहीं रहा है वे इसके विषयोंको देखकर एकवार अवश्य चौकेंगे। जो वर्णाचार को निरा ढकौसला समझते हैं वे अवश्य इसे धूर्त और ढोंगीप्रणीत कहेंगे। जिनके मगज में भट्टारक और त्रिवर्णाचार नाम ही शल्यवत् चुभते हैं वे अवश्य इसे अप्रमाणता और आगमविरुद्धताकी ओर खसीटेंगे इसमें जरा भी सन्देह नहीं। पद्मपुराण हरिवंशपुराण महापुराण यशस्तिलकचम्पू जैसे पुराण और चरित ग्रंथोंको, विद्यानुवाद विद्यानुशासन भैरवपद्मावतीकल्प ज्वालामालिनीकल्प जैसे मंत्र शास्त्रोंको, इन्द्रनन्दि प्रतिष्ठापाठ वसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ आशाधर प्रतिष्ठापाठ नेमिचंद्र प्रतिष्ठापाठ अकलंक प्रतिष्ठापाठ जैसे पूजाशास्त्रोंको, रत्नकरंडक मूलाचार आचारसार धर्माभूत जैसे आचार ग्रन्थोंको, त्रिलोकप्रज्ञप्ति त्रिलोकसार जैसे लोक व्यवस्थापक शास्त्रोंको एवं एक एककर जैनमतके सभी विषयोंको अप्रमाण और अलीक (झूठा) मानते हैं वे इस ग्रन्थको अप्रमाण और ढोंगी प्रणीत मानें इसमें आश्चर्य ही क्या है? जब कि जैन धर्म जैसे कल्याणकारी धर्मको झूठा कहनेवाला अजैन ही नहीं, जैननामधारी भी (दिगम्बर जैन) संसारमें मौजूद हैं तब इस सामान्य ग्रन्थकी अवहेलना करनेवाले इस संसारमें न पाये जाय यह हो नहीं सकता।”

जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, हीराबाग, गिरगांव, बम्बई से वीरनि०

सं. २४५१ में प्रकाशित, “त्रैवर्णिकाचार” की प्रस्तावना (भूमिका) पृष्ठ-३ इस लेखसे भली भांति प्रतीत होता है कि भ० सोमसेनजीका त्रैवर्णिकाचार ग्रन्थ दिगम्बर जैन समाजमें प्रतिष्ठित आचार ग्रन्थ है। इसीके अनुसार दिगम्बर समाज स्वाचार पालन करता है॥

२. दिगम्बर पं. श्रीमान् न्यामतसिंहजी जैन टीकरीवाले लिखते हैं “अब हम त्रिवर्णाचार के भाषाकार एवं भूमिका लेखकसे भी कुछ शब्द कहदेना चाहते हैं। आपका लिखना कि “मुझे तो इस ग्रन्थका प्रायः कोई भी विषय शास्त्र विरुद्ध नहीं जान पड़ता। इस ग्रन्थमें जो जो विषय बताये हैं उनका बीज ऋषिप्रणीत शास्त्रोंमें मिलता है” नितान्त मिथ्या है। सच पूछीये तो आप ही जैसे विद्वानोंकी कृपाका फल है जो दिगम्बर समाजको पेसी बेहूदी बातें सुननी पड़ती रही हैं। हमारा तो भाषांतर कारजीको सादर निमंत्रण है कि आप अन्य बातों को छोड़ दें कृपया इस पुस्तककी बातोंके सम्बन्धमें ही ऋषिप्रणीत शास्त्रोंके आधार उपस्थित करें। क्या आप बतला सकते हैं कि किसी भी ऋषिने अपने लेखमें ऋतुकालमें भी स्त्रीके साथ भोग करनेका विधान किया है। हमारी तो दृढ़ धारणा है कि यह सब ब्राह्मणत्व है। ब्राह्मणोंमें जब धर्म के प्रतिकूल बोलनेका बल नहीं रहा तब उन्होंने जैन (दिगम्बर) धर्मके ही नामपर साहित्याका निर्माण किया है और उसमें उन्होंने अपनी मान्यताओंको बतलाया है॥ त्रिवर्णाचार के प्रकरण के प्रकरण ब्राह्मण साहित्यसे मिलते हैं फिर भी भाषाकारजी यही कहते चले जाते हैं कि मुझे इसमें कुछ भी बात जैनधर्म के प्रतिकूल नहीं मालूम पड़ती है।”

—दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ, अंबालाका मासिक मुखपत्र “जैनदर्शन”
वर्ष-४ अंक-३

इस लेखसे साफ दिखता है कि—दिगम्बर शास्त्रोंकी कैसी शोचनीय दशा है और दिगम्बर शास्त्रनिर्माताओंके उपर अजैन साहित्यकी कितनी गहरी छाप पड़ी हुई है। वरना कट्टर दिगम्बर विद्वान भी अपने ग्रंथों के लिये ऐसा क्यों लिखते ?

३—प्रसिद्ध दि० ग्रन्थपरीक्षक जुगलकिशोरजी मुख्तार भी त्रैवर्णिकाचारके लिये उपरसा ही मत जाहिर करते हैं।

(देखिये, जैनका ता० १२, मई १३३५का अंक, पृ० ४१६.)

अब पाठकों को स्वयं ज्ञात हुआ होगा कि—मैंने तीसरे प्रकरण के अंतमें जैन सत्य प्रकाश वर्ष १ अंक ७ के पृष्ठ २१६ में दिगम्बर आचार्योंकी ग्रन्थ निर्माण पद्धतिका जो स्वरूप बताया है वह कितने अंशमें ठीक है ?

और साथ ही साथ इस बातका भी कुछ कुछ परिचय मिल गया होगा कि—दिगम्बर शास्त्र कैसे बने ? । अस्तु । जैन जयति शासनम् ॥

(भाग-१, २, समाप्त)

× यहां १. उत्पत्ति और २ ग्रंथलब्धा ये दोनों भाग समाप्त होते हैं। अब ग्रन्थसर्जन नामका तीसरा भाग पाठकोंके सामने समयपर रखा जायगा।

समीक्षाभ्रमाविष्करण

[याने दिगम्बर मतानुयायी अजितकुमार शास्त्री
'श्वेताम्बर मत समीक्षा'मां आलेखेल प्रश्नो प्रयुत्तर]

लेखक—आचार्य महाराज श्रीमद् विजयलावण्यसूरिजी

(क्रमांक ३१ थी चालु)

साधु क्या कभी मांसभक्षण भी करे ?

आशाम्बर लेखकने भासेल मृगतृष्णा

विमल आचारना स्वादु सलिलने वर्षावनार श्रुतकेवली प्रणीत परम-
पावन जे आचाराङ्गसूत्र तेना निरवद्य पाठोने आशाम्बर लेखक मांसभक्षणनी
पुष्टिमां आगळ धरे छे, अफसोस ! जुओ ते पाठो—

“भिक्षागा नामेगे एवमाहंसु-समाणा वा वसमाणा वा गामाणुगामं
दूइज्जमाणे खुद्वाए खलु अयं गामे संनिरुद्धाए नो महालए सेहंता भयंतारो
बाहिरगाणि गामाणि भिक्षायरियाए वयह, संति तत्थेगइयस्स भिक्षुस्स
पुरेसंथुया वा पच्छासंथुया वा परवसंति, तंजहा—गाहावई वा गाहावइणीओ
वा गाहावइपुत्ता वा गाहावइधूयाओ वा गाहावहसुण्हाओ वा धाओ
वा दासा वा दासीओ वा कम्मकरा वा कम्मकरीओ वा,
तहप्पगाराइं कुलाइं पुरेसंथुयाणि वा पच्छासंथुयाणि वा पुठ्ठामेव भिक्षा-
यरियाए अणुपविसिस्सामि, अविय इत्थ लभिसिस्सामि—पिंडं वा लोयं वा खीरं
वा दहिं वा नवणीयं वा घयं वा गुळं वा तिलं वा महुं वा मज्जं वा मसं वा
सक्कुलिं वा फाणियं वा पूयं वा सिंहरिणि वा, तं पुठ्ठामेव भुञ्जा पिञ्जा
पडिग्गहं च संलिहिय संमज्जिय तओ पच्छा भिक्षूहिं सद्धि गाहा० पवि-
सिस्सामि वा निक्खमिस्सामि वा माइठाणं संपासे, तं नो एवं करिज्जा ॥

ते तत्थ भिक्षूहिं सद्धि कालेण अणुपविसिस्सा तत्थियरेयरेहिं कुलेहिं
सःमुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं पडिगाहिस्सा आहारं आहारिज्जा, पयं
खलु तस्स भिक्षुस्स वा भिक्षुणीए वा सामग्गियं ॥ ” सू २४

[भिक्षुका नामैके एवमुचुः तिष्ठन्तो वा वसमाना वा ग्रामानुग्रामं
पूयमानान्, क्षुल्लकः खलु अयं ग्रामः संनिरुद्धो नो महान् ततो हन्त भवन्तो
बहिर्गान् ग्रामान् भिक्षाचर्यायै व्रजन्तु, यद्वा—तत्रैकस्य भिक्षोः पुरःसंस्तुता
वा पश्चात् संस्तुता वा परिवसन्ति, तद्यथा—गृहपतिर्वा गृहपत्न्यो वा गृहपति-
पुत्रा वा गृहपतिस्त्रुषा वा धात्र्यो वा दासा वा दास्यो वा कर्मकरा वा
कर्मकर्यो वा, तथाप्रकाराणि कुलानि पुरःसंस्तुतानि वा पश्चात् संस्तुतानि
वा पूर्वमेव भिक्षाचर्यायै अनुप्रवेक्ष्यामि, अपिचात्र लास्ये पिण्डं वा लोयं वा
क्षीरं वा दधि वा नवनीतं वा धृतं वा गुडं वा तैलं वा मधु वा मथं वा

માંસં વા શષ્કુલીં વા ફાણિતં વા પૂપં વા શિશ્વરિણીં વા, તત્ પૂર્વમેવ ભુક્ત્વા પીત્વા પતદ્ગ્રહં ચ સંલિહ્ય સંમૂજ્ય તતઃ પશ્ચાદ્ ભિશ્કુભિઃ સાર્દ્ધં ગૃહ૦ પ્રવેશ્યામિ વા નિષ્ક્રમિશ્યામિ વા માતૃસ્થાનં સંસ્પૃશેત્ તન્નૈવં કુર્યાત્ ।

સ તત્ર ભિશ્કુભિઃ સાર્દ્ધં કાલેનાનુપ્રવિશ્ય તત્રેતરેતરેભ્યઃ કુલેભ્યઃ સામુદાનિકમેષણીયં વેષિકં પિણ્ડપાતં પ્રતિગૃહ્ય આહારમાહરેત્, પતત્ ખલુ તસ્ય ભિક્ષોઃ ભિક્ષુકયા વા સામગ્રમ્ ॥]

इति आचाराङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धे प्रथमचूलिकायाः
पिण्डैषणाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशे चतुर्विंशतितमं सूत्रम् ॥

આશામ્બર લેખકે આ સૂત્રના આદિ ભાગને જતો કરી અવશિષ્ટ પાઠ આપેલ છે. અર્થ કરવામાં પણ ગુજરાતી ભાષાન્તરનો આધાર લીધેલ છે, આ બાબતની ચર્ચા જિજ્ઞાસિત અર્થમાં વિલમ્બકારી માની જાતી કરીએ છીએ । પ્રસ્તુતપાઠનો ભાવાર્થ—

“જંઘાબલની પરિક્ષીણતાને અંગે એક જ ક્ષેત્રના નિવાસી યા તો માસ-કલ્પાદિની મર્યાદાએ અમુક ક્ષેત્રમાં રહેલ મુનિએ ગ્રામાનુગ્રામ વિહાર કરી આવેલ પ્રાઘૂર્ણક મુનિને દેખીને ‘રખેને ગોચરીમાં ભાગ ન પડાવે એવી બુદ્ધિથી’ કદી પણ એમ ન કહેવું કે “ભગવન્ ! આ ગામ ઘણું નાનું છે. અલ્પ ભિક્ષા આપે છે. અને ભિક્ષાકુલો પણ સૂતકાદિથી રોકાયા છે. માટે આપેલ બહારના ગામોમાં ‘પરા વગેરેમાં’ ગોચરી માટે પધારો” આમ કહેવાથી માતૃસ્થાન ‘માયા’ દોષ લાગે છે. અથવા, મુનિએ એમ પણ ન વિચારવું કે “આ ગામમાં મારો પૂર્વપરિચિત બ્રાતૃવર્ગ અને પશ્ચાત્ પરિચિત શ્વશૂર વર્ગ છે. જેવા કે ગૃહસ્થો, ગૃહસ્થવાનુઓ, ગૃહસ્થપુત્રો, ગૃહસ્થપુત્રીઓ, ગૃહસ્થ પુત્રવધુઓ, ધાવમાતાઓ, દાસો, દાસીઓ, ચાકરો અને ચાકરડીઓ, આવા પૂર્વપરિચિત બ્રાતૃપક્ષવાળા અને પશ્ચાત્ પરિચિત શ્વશૂર પક્ષવાળા કુલમાં ગોચરીને માટે હું પ્રથમ જઈશ, અને ત્યાંથી અનેક જાતની વસ્તુઓ મને મળશે, જેવી કે-શાલીના ઓદન વગેરે. નયનાદિને રુચતી રસકસ વાળી વસ્તુ [નવ વિગઈઓ-] દુધ દંહિ માખણ ઘી ગોલ તેલ મધ મદિરા માંસ, તલસાંકળી, ગલ્માણુ, બુંદો, અને કરથો મથેલું સાકરમિશ્રિત દંહિ; આ મળેલ વસ્તુ ખાઈ પીઈને પાત્રા ચોક્ષાં-સાફ કરીશ, વાદમાં આગન્તુક મુનિઓ ન જાણી જાય એવી સાવચેતી રાખી અવિકૃતવદને તેમની સાથે ગૃહસ્થ કુલમાં ગોચરી માટે જઈશ આવીશ” આવો વિચાર કરવાથી માતૃસ્થાન ‘માયા’ દોષ લાગે છે । મુનિએ કઈ રીતે વર્તવું તે હવે જણાવે છે:—

ભિક્ષાના અર્થી મુનિ આગન્તુક મુનિની સાથે જ ભિક્ષાના ઉચિત સમયે ગૃહપતિકુલમાં જાય, અને ત્યાં નાના મોટા કુલમાંથી ‘એસિય’ ઉદ્ગમાદિ દોષથી રહિત ષષણીય, અને ‘વેસિય’ ધાત્રીવૃત્તિનિમિત્તાદિ દોષથી રહિત મુનિવેષમાત્રથી ભિક્ષા ગ્રહણ કરી ગ્રાસૈષણાદિ દોષરહિત પળે પ્રાઘૂર્ણક મુનિની સાથે આહાર વાપરે, આ સાધુ સાધ્વીની શુદ્ધ સાધુતા છે. ॥”

वाचकदृष्टिगोचर करल पाठनो निःष्यन्द

उपर जणावेल आचाराङ्ग सूत्रनो पाठ आहारने अंगे माया सेवनने निषेध शुद्ध मार्गनुं दर्शन करावे छे. आमां पण प्रथम मायाना बे प्रकारो बतावी तेनो बहिष्कार करवामां आवेल छे, आ बेमांथी प्रथम प्रकार ए छे के ग्रामान्तरथी आवेल मुनिराजने खोटुं समजावी बहारनां गामोमां गोचरी माटे मोकलवा तथा बीजो प्रकार ए छे के आगन्तुक मुनि न जाणी जाय तेम गुप्त रीते आहार लावी वापरवो. बादमां हुं निरन्न छुं एवो आडंबर करी ते आगन्तुक प्राधूर्णक मुनिनी साथे गोचरी पाणी जवुं आववुं. आ बेमांथो द्वितीय प्रकारमां आहारनां कतिपय नामो बतावतां नव विगइयोनां नामो पण बताववामां आव्यां छे ।

आशाम्बरीय मन्तव्य

आ नव विगइओनी नामावलीमां मध माखण ने मांस मदिरानां नामो आवेल होवाथी निरुक्त पाठ मुनिने मांस भक्षणादिनी अनुमति आपे छे ।

उक्त मन्तव्यनी विचारविकलता

आशाम्बर लेखकनी आ मान्यता सद्विचारना सामा किनारानी छे, आशाम्बर लेखके भूलवुं नोतुं जोइतुं के आ बे प्रकार मायाना घरना छे. आनी मित्राचारीमां दोषावलीनो हार पेरवानो छे. माटे बनती त्वराए तेने त्यजो एवो बोधपाठ उपरनो पाठ पाठवे छे. ।

आशाम्बरीय आशङ्का

वारु, निषेध तो प्राप्त वस्तुनो ज होइ शके छे. मध माखण ने मांस मदिरा तो मुनिजनने प्राप्त ज नथी. कारण ? ए तो दीक्षादिनथी ज त्याज्य छे. अत एव मध माखण ने मांस मदिराने निषेध कोटीमां मुकवानी जरूरत रहेती नथी, छतां पण मुकेल छे. माटे हुं मानुं छुं के मध माखण ने मांस मदिरा कल्प्य छे एम आ पाठ जणावे छे.

आशङ्कानो उत्तर

मुनि अवस्थामां जे प्राप्त होय तेनो ज मुनिने निषेध होइ शके, एवं एकांत कथन स्याद्वादवादी अनभिज्ञताने आभारी छे । आ एकांत कथन स्वीकारवामां आवे तो माया सेवननो निषेध पण व्यर्थ जशे. कारण ? मुनिने माया सेवन तो दीक्षादिनथी ज त्याज्य छे. आशाम्बर लेखक एवं तो साहस नहि ज खेडी शके के माया सेवननो निषेध पण न करवो, कारण ? दिगम्बर ग्रन्थे दिगम्बर मुनिने मायावर्जननां अनेक वाक्यो समर्प्यां छे । तथा प्राप्तवस्तुनो निषेध मानीने नीचेना पाठानो प्रवेश कई रीते थई शकसे ?

“અલોકે જીવા ન સન્તિ” (અલોકમાં જીવો નથી)

“હૃદે વહ્નિનાસ્તિ” (જલહૃદમાં અગ્નિ નથી)

કારણકે અલોકમાં જીવોની અને જલહૃદમાં અગ્નિની પ્રાપ્તિ જ નથી।

જિજ્ઞાસુઓની જિજ્ઞાસાપૂર્તિ

કદાચ મધ્યસ્થ હૃદયે પૃથ્વી જિજ્ઞાસા પ્રદર્શિત કરવામાં આવે કે પ્રસ્તુત પાઠમાં મધ માંસને માંસ મદિરાનાં નામો શા માટે આપ્યાં? કાંઈ પ્રયોજન છે? આ જિજ્ઞાસાની તૃપ્તિમાં અનેક પ્રકારો સંભવે છે।

પ્રથમ પ્રકાર—યથાપિ પ્રસ્તુતમાં કલ્પ્ય જે પાંચ વિગદો—દુધ, દંદિ, ઘી, ગોઠ અને તેલ, તેનાં નામની જરૂર હતી, છતાં પણ વિકૃતિ ભાવની સામ્યતાને લઈને વિગદના દંડક પાઠને અસંદિત રાખવા મધ માંસને માંસ મદિરાના નામો આપ્યાં છે, અર્થાત્—પ્રસ્તુતમાં તેનું વિશેષ પ્રયોજન નથી. જૈનાગમની શૈલી છે કે પ્રસ્તુતમાં વિશેષ પ્રયોજન ન હોય તો પણ ક્ષયિત્ત દંડક પાઠને અસંદિત રાખવા પણ નામો આપવામાં આવે છે, આ ઘાત અમો પ્રથમ સચિસ્તર જણાવો આવ્યા છીએ।

દ્વિતીય પ્રકાર—જે કુલમાં પ્રસ્તુત મુનિને ગોષરી જવાનું છે, તે કુલો ભોજનના વિષયમાં અત્યંત સમૃદ્ધ છે. ત્યાં વિવિધ જાતનાં ભોજનો મઠી શકશે એમ સૂચવવાને માટે મધ માંસને માંસ મદિરાનાં પણ નામો આપ્યાં છે. પરંતુ ત્યાં આટલી જ વસ્તુ અવશ્ય મઠશે જ ઓછી વત્તી નહિ એમ જણાવવા માટે નથી, ભિક્ષાકુલની સમૃદ્ધિ જણાવવાનો ઉદ્દેશ જો ન હોત તો ‘ત્યાં મને ઇષ્ટ ભોજન મઠશે’ એટલું જ જણાવત। વ્યવહારમાં પણ કોઈ કહે કે “તે શેઠ ઘણા ધર્મિષ્ટ હતા, મને દવા દાહની જોગવાઈ કરી આપી હતી” તો અહિંયા દારુ શબ્દથી મદિરા લેવાની નથી, કિન્તુ વિવિધ જાતની અનુકૂલ દવા તથા તેનાં સાધનો સમજવાનાં હોય છે।

તૃતીય પ્રકાર—જેને માટે ઉત્સર્ગ તેને માટે અપવાદ અને જેને માટે અપવાદ તેને માટે ઉત્સર્ગ અવશ્ય હોય છે. પરંતુ કયે સમયે કયો માર્ગ દિતાવહ છે તેની લગમ ભવભીરુ ગીતાર્થ ગુરુની મતિને આધીન છે. આ ઘાતમાં પ્રથેતામ્બર તથા દિગમ્બર દર્શન સહમત છે, આ નિયમને અનુસારે કોઈ વિકટ પરિસ્થિતિમાં લેપાદિ વાહ્ય પરિભોગાદિને અર્થે મધ વગેરે ગ્રહણ કરવાં પડે તો પણ માયાને તો સેવવી જ નહિ, આ ઘાતને જણાવવા માટે મધ માંસને માંસ મદિરાનાં નામો આપ્યાં છે. જુઓ આ ઘાતની સાક્ષી પુરતાં ટીકાકાર મહારાજનાં વચનો:—

“નવરં મધમાંસે (મધુનવનીતે ચ) છેદસુત્રાભિપ્રાયેણ વ્યાખ્યેયે।

ભાવાર્થ—આપવાદિક વિધાનની બહુલતાવાળા છેદ સૂત્રના અભિપ્રાયથી માંસ મદિરાનું (અને મધ માંસને) વ્યાખ્યાન કરવું।

ઉવસગ્ગહરથોત્તની એક લઘુ વૃત્તિના કર્તાનું નામ

પૂર્ણચન્દ્રાચાર્ય કે ચન્દ્રાચાર્ય ?

[એક ચર્ચા]

લેખક:—શ્રીયુત સારાલાલ મણિલાલ નવાળ.

“શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ”ના ચાલુ વર્ષના ૮ મા અંકના પૃષ્ઠ ૨૮૯ થી ૨૯૧ પર શ્રીયુત હીરાલાલ રસિકદાસ કાપડિયાએ ઉપર મુજબની એક ચર્ચા ઉપસ્થિત કરી છે, અને તેમાં તેઓશ્રીએ નીચે મુજબના ચાર પ્રશ્નો ઉપસ્થિત કરીને મારી પાસે તેનાં પ્રમાણે માંગેલાં છે.

પ્રશ્ન ૧—પૂર્ણચન્દ્રાચાર્ય ગત પૂર્ણચન્દ્ર એવું નામ હોઈ શકે કે કેમ ?

પ્રશ્ન ૨—ઉપર્યુક્ત ઉલ્લેખગત સમાપ્તા શબ્દ હોવા છતાં એની પૂર્વે સંપૂર્ણ પદ આવે છે તેનું શું ?

પ્રશ્ન ૩—ક્રમાંક ૭૭૫ માં નોંધાયેલ પ્રતિના અંતમાં આ પ્રમાણે પંક્તિ ઉપલબ્ધ થાય છે તેનું શું ? “ઇત્યુપસર્ગહરસ્તોત્રલઘુવૃત્તિઃ પૂર્ણચન્દ્રાચાર્યકૃતિરિયં સમાપ્તા”

પ્રશ્ન ૪—પૂર્ણચન્દ્રાચાર્ય અથવા શ્રીયુત નવાળના મત પ્રમાણે ચન્દ્રાચાર્ય ક્યારે થઈ ગયા છે ?

પ્રશ્ન ૧ ના જવાબમાં જણાવવાનું કે પૂર્ણચન્દ્રાચાર્યગત પૂર્ણચન્દ્ર એવું નામ હોઈ શકે જ નહિ એવું મારું કહેવું છે પણ નહિ અને હતું પણ નહિ. એટલે પૂર્ણચન્દ્રાચાર્ય નામ હોઈ શકે તે વાતનો હું ઇન્કાર કરતો જ નથી. ખરી રીતે આ પ્રશ્ન બહુ મહત્વનો છે જ નહીં.

પ્રશ્ન ૨ ના ઉત્તરમાં જણાવવાનું કે તેઓ જોમ પૃ. ૨૯૧ ઉપર જણાવે છે કે:—

“અત્ર ‘સંપૂર્ણચન્દ્રાચાર્ય’ નામ હોવાની સંભાવના માટે અવકાશ મળે છે, પરંતુ આવું કોઈ નામ જાણવા જોવામાં નહિ હોવાથી અથવા તે હસ્તલિખિત પ્રતિઓના

ચતુર્થ પ્રકાર—કર્મની ગહન સ્થિતિ છે. ઉન્નતિના શિખરે ચઢેલ, માનવીઓને પળ અધઃપાતના ગમ્भीર ગર્તમાં ઝીપલાવે છે। આ કર્મપરિણતિના યોગે કદાચ કોઈ મુનિ અત્યન્ત પ્રમાદગ્રસ્ત બની પૂર્વના સંસ્કારાદિને લઈને માંસાદિકને તીવ્ર અનુરાગી થાય, અને ઇચ્છા કરે, તો તેને રોકવાને માટે મધ માંસ અને માંસ મદિરાનાં નામો આપ્યાં છે। જુઓ આ વાતની સાક્ષી પુરતાં ટીકાકાર મહારાજનાં વચનો:—

“અથવા કશ્ચિદતિપ્રમાદાવષ્ટબ્ધોઽત્યન્તગૃહ્ણુતયા મધુમધમાંસાન્યવ્યા-શ્રયેદતસ્તદુપાદાનમ્ ।”

ભાવાર્થ—અત્યન્ત પ્રમાદથી ઘેરાયેલ કોઈ મુનિ તીવ્ર આસક્તિના યોગે કદાચ મધ માંસ અને માંસ મદિરાનું પળ આશ્રયણ કરે તો તેને રોકવા માટે મધ માંસ અને માંસ મદિરાનાં નામો આપ્યાં છે. (અપૂર્ણ)

અભ્યાસીઓને સુવિદિત છે તેમ અમુક અક્ષરને નિરર્થક સૂચવવા માટે તેના ઉપર લખાતા અનુસ્વાની પદ્ધતિને ધ્યાનમાં રાખીને ‘સં’ વધારતો ગણાય તો તે અવાસ્તવિક નથી. ”

ઉપર મુજબ શ્રીયુત કાપડ્યા ‘સં’ વધારતો હોવાની કલ્પના કરે છે, તેવી જ રીતે ‘સમાપ્તા’ શબ્દ વધારતો હોવાની કલ્પના પણ કેમ ન થઈ શકે? આ વૃત્તિના કર્તા ચન્દ્રાચાર્ય છે કે પૂર્ણચન્દ્રાચાર્ય છે?—તે પ્રશ્ન બહુ મહત્વનો નથી એટલે તેઓ જે ત્રીજા પ્રશ્નમાં ક્રમાંક ૭૭૫ ની પંક્તિ રચી કરે છે તે મુજબ આ વૃત્તિના કર્તા તરીકે પૂર્ણચન્દ્રાચાર્યનો સ્વીકાર કરવાથી પણ જે ધરાણથી મેં ‘ઉવસગ્ગર સ્તોત્ર’ની લેખમાળા શરૂ કરી છે, તેના મુખ્ય મુદ્દાઓનો ખુલાસો થતો નથી. આ લેખમાળા શરૂ કરવાનો મારો મુખ્ય ધરાદો નીચે મુજબના મુદ્દાઓનો નિકાલ લાવવાનો છે:—

૧. ‘ઉવસગ્ગર સ્તોત્ર’ની ગાથાઓનું પ્રમાણ કેટલું?

૨. તેના કર્તા શ્રુતકેવલી ભદ્રાબાહુ જ છે કે ખીજા કોઈ તે જ નામના પૂર્વાચાર્ય છે તે સંબંધીની વિચારણા.

૩. આ સ્તોત્રનું માહાત્મ્ય.

વળી તેઓએ પૃ. ૨૯૧ ની ડુટનોટમાં મને પ્રશ્ન પૂછ્યો છે કે—“પ્રસ્તુત લઘુવૃત્તિના કર્તાનું નામ ચન્દ્રાચાર્ય છે, એવું સૂચન પૂર્વે અન્ય કોઈએ કર્યું છે કે નહિ અને જે કર્યું હોય તો આ એમનું ઉપજીવિત કથન છે કે કેમ?”

આ પ્રશ્નના ઉત્તરમાં મારે જણાવવાનું એજ છે કે મારા તરફથી પ્રસિદ્ધ થયેલ ‘જૈન સ્તોત્ર સંદોહ ભાગ ૧ લા’ના પરિશિષ્ટ ગ તરીકે આ લઘુવૃત્તિના કર્તા તરીકે શ્રી ચન્દ્રાચાર્ય છે, એવું સૂચન સ્વર્ગસ્થ દક્ષિણવિહારી મુનિમહારાજ શ્રી અમરવિજયજીના વિદ્વાન શિષ્ય શ્રી ચતુરવિજયજીએ ઇ. સ. ૧૯૩૨ માં પ્રથમ કરેલું છે, અને તે સંબંધી ચર્ચા પણ તેઓએ તે જ ગ્રંથની પોતે લખેલી સંસ્કૃત પ્રસ્તાવનામાં કરેલી છે. અને મેં પોતે પણ ઉપર્યુક્ત લઘુવૃત્તિની પ્રત તેઓશ્રીના સ્વર્ગસ્થ ચરુદેવના સંગ્રહમાં સિનોર મુકામે આજથી પાંચ, છ વર્ષ પહેલાં જોઈ હતી, તેના અંતમાં આ પ્રમાણે પંક્તિ લખેલી હતી: “**इत्युपसर्गहरस्तोत्रलघुवृत्तिः चन्द्राचार्यकृता**” અને ઉપર્યુક્ત લખણુ પરથી જ મેં મારી જાતે આ સ્વતંત્ર કલ્પના કરી હતી અને તે કલ્પના અવાસ્તવિક હોવા માટે મારી સામે કાંઈ પણ કારણો રચી થયેલાં નહિ હોવાથી મેં તે પ્રમાણે કથન કરેલું છે. વળી હું ઉપર જણાવી ગયો છું તે પ્રમાણે લઘુવૃત્તિના કર્તા તરીકે ચન્દ્રાચાર્યના બદલે પૂર્ણચન્દ્રાચાર્ય તરીકે સ્વીકારવાથી મારા મુખ્ય મુદ્દાઓનો કાંઈ નિકાલ થતો નથી. આટલું જણાવી શ્રીયુત કાપડ્યાને હું વિનંતિ કરું છું કે તેઓએ જે પૃષ્ઠ ૨૮૯ પર ક્રમાંક ૭૮૨ અને ૭૮૩ વાળી વૃત્તિનો તથા અવચૂરિનો ઉલ્લેખ કરેલો છે, તેમાં મારા ઉપરના ત્રણ મુખ્ય મુદ્દાઓ અંગે કાંઈ પણ મહત્વનો ઉલ્લેખ તેઓના જણાવવામાં આવ્યો હોય તો તે રચી કરીને મારા કાર્યમાં મને સહાયતા આપે.

ચોથા પ્રશ્નના ઉત્તરમાં અત્યારે હું એટલું જ જણાવવું યોગ્ય ધારું છું કે આ લઘુવૃત્તિના કર્તાને હું ઉપલબ્ધ ટીકાઓના ટીકાકારોમાં સૌથી પ્રાચીન ટીકાકાર તરીકે માનું છું અને તેમનો સમય વિક્રમની આરમી સદી પછીનો માનવો નથી. તે સંબંધીનાં પ્રમાણો, તેઓ શ્રી ચંદ્રસેણુ ક્ષમાશ્રમણુ સંબંધી ચર્ચા આ માસિકમાં કરી લે, ત્યારપછી આપવાની ઇચ્છા ધરાવતો હું વિરમુ છું.

વડોદરા. તા. ૨૪-૩-૩૮.

શ્રી યશસ્વત્સાગર અને સ્યાદ્રાદમુકતાવલી

લેખક: શ્રીયુત હીરાલલ રસિકદાસ કાપડિયા એમ. એ.

શ્રી યશસ્વત્સાગર ક્યારે થયા, તેઓ કોના શિષ્ય હતા, તેમના ધર્મગુરુ કોણ હશે ઇત્યાદિ હકીકતો ઉપર થોડોઘણો પ્રકાશ શ્રી જૈનસ્યાદ્રાદમુકતાવલીની પ્રસ્તાવનામાં એ ગ્રંથના સંશોધક “ યોગનિષ્ઠ મુનિ શ્રી બુદ્ધિસાગરજી ” (સ્વ. શ્રી બુદ્ધિસાગરસરિજી) તરફથી વિ. સં. ૧૯૬૫માં પાડવામાં આવ્યો છે. ત્યાં એમણે સૂચવ્યું કે તેઓ “ કયા દેશમાં વિશેષતઃ વિચારતા હતા તે નક્કો કરવાનું બાકી રહે છે તો પણ ગુજરાત, મારવાડ, વગેરે દેશમાં વિચરતા હશે એમ અનુમાન થાય છે. સંવત ૧૭૨૦ લગભગની સાલમાં તપાગચ્છમાં આચાર્ય શ્રી વિજયપ્રભસૂરીશ્વર થયા. શ્રી વિજયપ્રભસૂરિના શિષ્ય શ્રી પંડિત કલ્યાણસાગરજી થયા. તેમના શિષ્ય પંડિત યશઃસાગરજી થયા. તેમના શિષ્ય પંડિત શ્રી યશસ્વત્સાગરજી થયા. શ્રી યશસ્વત્સાગરજી ચારિત્રસાગરજીની પાસે ભણ્યા હોય એમ લાગે છે તેથી સ્વરચિત ગ્રંથમાં ગુરુચારિત્રસાગર આમ લખે છે— કદાચ ધર્મગુરુ પણ હોય તે જ્ઞાની જાણે.”

ઇ. સ. ૧૯૩૩માં પ્રસિદ્ધ થયેલ જૈન સાહિત્યનો સંક્ષિપ્ત ઇતિહાસ (પૃ. ૬૫૬) માં નીચે મુજબ ઉલ્લેખ છે:—

“ ત. ચારિત્રસાગર-કલ્યાણસાગર-યશઃસાગર શિષ્ય યશસ્વત્સાગર (જસવંતસાગર)^૧ થયા. તે પણ વિદ્વાન હતા. તેમણે વિચારપદ્ધત્રિશિક્ષા પર અવચૂરિ સં. ૧૭૨૧ (૧૭૧૨ ?)^૨ ભાવસમતિકા સં. ૧૭૪૦માં, જૈન સપ્તપદાર્થી સં. ૧૭૫૭માં, સંઆમપુરમાં જયસિંહના રાજ્યમાં પ્રમાણનાદર્થ સં. ૧૭૯૫માં ગણેશકૃત ગ્રહલાઘવ નામના જ્યોતિષના ગ્રંથ પર વાર્તિક સં. ૧૭૬૦માં, જન્મકુંડલી પર યશોરાજી રાજપદ્ધતિ (સ્વલિખિત સં. ૧૭૬૨), રત્નાકરાવતારિકા પંજિકામાંથી વાદ્યર્થનિરૂપણા સ્તવનરત્ન રચ્યાં. આ સર્વેની પ્રતો ઉદયપુરના વિવેકવિજય યતિના બંડારમાં ઉપલબ્ધ છે. તેમણે સ્યાદ્રાદમુકતાવલી પણ રચેલ છે તે મુદ્રિત થયેલ છે.”

આ ઉપરથી આપણે જોઈ શકીએ છીએ કે શ્રી યશસ્વત્સાગર વિ. સ. ૧૭૧૨ થી અથવા તો ૧૭૨૧ થી વિ. સ. ૧૭૬૨ સુધી તો સાહિત્ય ક્ષેત્રમાં અવારનવાર ફાળો આપતા રહ્યા છે, અને તેમના હસ્તાક્ષરનો નમૂનો પણ મળે તેમ છે. પરંતુ તેમનો ચારિત્રસાગર અને કલ્યાણસાગર સાથે શો સંબંધ છે તેનો અત્ર ખુલાસો કરાયેલો નથી. વિશેષમાં વિચારપદ્ધત્રિશિક્ષા ઉપર અવચૂરિ વિ. સં. ૧૮૧૨માં રચાઈ કે વિ. સં. ૧૭૨૧માં એ આ તત વિચાર કરતો બાકી રહે છે.

જૈની સપ્તપદાર્થીની સ્વ. મુનિ હિમાંશુવિજયજી (અનેકાન્તી તરફથી ઇ. સ. ૧૯૩૪ (જેકે સુદિ ૧૫ ધમસવત ૧૨)માં જે પ્રસ્તાવના લખાયેલી છે તેના ૧૮મા પૃષ્ઠમાં

૧-૨ આ કૌંસ તેમજ એમાંનું લખાણ મારું નથી.

સૂચવાયું છે કે ચારિત્રસાગર એ યશસ્વત્સાગરના વિદ્યાગુરુ હશે, ક્યાં તો દાદા ગુરુ હશે અથવા તો સૌથી પ્રથમ ધર્મમાં જોડનાર કે મોટા ઉપકારી હશે. એટલે આ ઉપરથી પણ યશસ્વત્સાગર અને ચારિત્રસાગરના સંબંધ વિષે નિશ્ચિત રૂપે આપણે કંઈ જાણી શકતા નથી. તો એ દિશામાં વિશેષ પ્રયાસ થવો ઘટે.

સ્વ. હિમાંશુવિજયજીએ શ્રી. યશસ્વત્સાગરના ૧૪ ગ્રંથો ગણાવ્યા છે. તેમાં ઉપર ગણાવેલા તમામ ગ્રંથો ઉપરાંત શબ્દાર્થ સંબંધ (વિ. સ. ૧૭૫૮), જૈન તર્ક ભાષા અને વાદસંખ્યા, માનમંજરી અને સમાસ શૈલ્યા એમ પાંચનો તેમણે નિર્દેશ કર્યો છે. વળી તેમણે વિચારપટ્ટત્રિશિકાવચ્ચરિતો રચના સંવત્ ૧૭૨૧ નોંધ્યો છે. વિશેષમાં તેમણે જૈનસપ્તદાર્થી એવું નામ નોંધતાં એ ગ્રંથની પ્રશસ્તિમાં સૂચવાયેલ અને અત એવ વારતવિક જણાવું જૈની સપ્ત પદાર્થી એવું નામ નોંધ્યું છે. એવી રીતે યશોગણ રાજપદ્ધતિને બદલે તેમણે યશોરાજપદ્ધતિ નામ રાખ્યું છે.

આ પ્રમાણે શ્રી યશસ્વત્સાગરની વિવિધ કૃતિઓની નોંધ થઈ છે. એમાં હું એકનો ઉમેરો સૂચવું છું. ભાંડારકર પ્રાચ્ય વિદ્યા સંશોધન મંદિર (પૂના) માં જે જૈન હસ્તલિખિત પ્રતિઓ છે તેમાંના આગમિક સાહિત્યને લગતા મારા જૈન હસ્તલિખિત પ્રતિઓનું વર્ણનાત્મક સૂચીપત્ર (Vol XVII, pt. II, pp. 106-107)માં શ્રી યશસ્વત્સાગરે રચેલી પાંચ પદ્યોની પ્રશસ્તિ છપાયેલી છે. તેમણે આ પ્રશસ્તિ કલ્પકિરણાવલીથી યુક્ત કલ્પસૂત્રની હસ્તલિખિત પ્રતિના અંતમાં આપેલી છે અને ત્યાં એ પ્રતિ તેમણે વિ. સં. ૧૭૨૧માં લખ્યાનો નિર્દેશ કર્યો છે. આ પ્રમાણે આપણને તેમની એક નાની સરખી કૃતિ તેમજ તેમના હસ્તાક્ષરનો નમૂનો પ્રાપ્ત થાય છે.

હવે આ ઊદાહરણને વિશેષ ન લખાવતાં હું સ્યાદ્રાહમુકતાવલી વિષે ફરીથી હકીકત રજૂ કરીશ. શ્રીયશસ્વત્સાગરે પોતાની એ કૃતિઓને સ્યાદ્રાહમુકતાવલી નામ આપ્યું છે. એમાંની એક કૃતિ જૈન સ્યાદ્રાહ મુકતાવલી એ નામથી પ્રસિદ્ધ થયેલી છે, જે કે એવું ખરું નામ સ્યાદ્રાહમુકતાવલી છે. ગ્રંથકારે એમની આ કૃતિમાં કોઈ પણ સ્થળે જૈન સ્યાદ્રાહમુકતાવલી એવું નામ રાખ્યું નથી. તેમ છતાં એના સંશોધકે આવું નામ રાખ્યું અને એના પ્રકાશકે “શ્રી જૈન સ્યાદ્રાહ મુકતાવલી” એવું નામ રાખ્યું તે વિચારણીય છે. મૂળ ગ્રંથકારે જે નામ રાખ્યું હોય તે બદલવું ક્યાં સુધી યુક્તિયુક્ત ગણાય તે કહેવું પડે તેમ નથી. કદાચ અત્ર એમ દલીલ કરી શકાય કે મુકતાવલી નામની અજૈન કૃતિથી આની ભિન્નતા સૂચવવા ‘જૈન’ શબ્દ ઉમેર્યો હોય કે જેવી હકીકત શ્રી યશોવિજયગણિ કૃત તર્કભાષાને અંગે જોવાય છે, તો તે યુક્ત નથી, કેમકે ‘સ્યાદ્રાહ’ શબ્દ દ્વારા એ કાર્ય સંસ રીતે સધાય છે જ. એટલે આવી પરિસ્થિતિમાં ‘જૈન’ શબ્દ ઉમેરવો જોઈતો ન હતો. વળી આથી એક બીજી પણ સૂરકેલી વધી છે. કોઈ પણ પુસ્તકાલયમાં જ્યાં ગ્રંથકારોની સૂચી ન હોય ત્યાં તો એના-સ્યાદ્રાહમુકતાવલીના અર્થર્થિ એ ન મળે એ બનવા-જોગ છે. આથી આ નામાંતર બે રીતે અયોગ્ય જણાય છે.

આ સ્યાદ્રાહમુકતાવલીના પ્રથમ પદ્યમાં શ્રી યશસ્વત્સાગરે જૈન વિશેષ તર્ક એવું નામ સૂચવ્યું હોય એમ જણાય છે. એટલે એ રીતે વિચારનાં તો જૈન વિશેષ તર્ક

અને સ્યાદ્રાદ્મુકતાવલી એ બંને નામો મુખપૃષ્ઠ ઉપર અપાવાં જોઈતાં હતાં. શ્રી હિમાંશુવિજયે જે જૈન તર્ક ભાષા નોંધી છે તે જૈન વિશેષ તર્કથી ભિન્ન છે કે અભિન્ન તે જાણવું બાકી રહે છે. ભાંડારકર પ્રાચ્ય ભવ્યા સંશોધન મંદિરમાં જૈન વિશેષ તર્ક યાને સ્યાદ્રાદ્મુકતાવલીની એક હસ્તલિખિત પ્રતિ છે. તેને અંગે મેં જે નોંધ કરેલી છે તે હાલમાં જૈન હસ્તલિખિત પ્રતિઓનું વર્ણનાત્મક સૂચીપત્ર (Vol XVII)માં છપાઈ છે. તેમાં તો ત્રણ જ સ્તંભક છે. એ દરેક સ્તંભકમાં પચીસ પચીસ પદો છે. વિશેષમાં પ્રથમ સ્તંભક 'સ્યાદ્રાદ્મનિર્ણય' વિષયક છે. આ પ્રમાણે આ અપ્રસિદ્ધ ગ્રંથ મુદ્રિત ગ્રંથથી જૂદો પડે છે, કેમકે મુદ્રિત ગ્રંથોમાં તો ચાર સ્તંભકો છે. અને એમાં અનુક્રમે ૮૯, ૭૭, ૩૭ અને ૪૪ પદો છે. વિશેષમાં ચારે સ્તંભકોના વિષય તરીકે એમાં અનુક્રમે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણ, પરોક્ષ પ્રમાણ, પ્રમેય અને નયને સ્થાન અપાયેલું છે.

ઉપર્યુક્ત હસ્તલિખિત પ્રતિનું પ્રથમ પદ આ મુદ્રિત ગ્રંથ સાથે બહુધા મળતું આવે છે અને ત્યાં પણ એ સ્યાદ્રાદ્મુકતાવલીને જૈન વિશેષ તર્ક તરીકે એના કર્તા એળખાવતા હોય એમ જણાય છે.

આ પ્રમાણે આપણને બે જૈન વિશેષ તર્ક યાને સ્યાદ્રાદ્મુકતાવલી પ્રાપ્ત થાય છે. એ ઉપરથી પ્રશ્ન ઉદ્ભવે છે કે આ બે માંથી કયો ગ્રંથ પ્રથમ રચ્યો હશે? આ સંબંધમાં વિશેષજ્ઞ પ્રકાશ પાડશે એવી આશા રાખતો હું વિરમું છું.

સાંકડી શેરી-ગોપીપુરા, સુરત. તા. ૧૫-૨-૩૭

૧ આ પૈકી ત્રીયા સ્તંભક (પૃ ૩૭)માં 'નચાસ્તવ' વાળું પદ ૪૦મા પદ તરીકે છપાયેલું છે અને એ પદના ઉપર 'સામન્તભદ્રાઃ' એમ છપાયેલું છે. એટલે શ્રી યશસ્વત્સાગર પણ આ પદને સમન્તભદ્રની કૃતિ માનતા હોય એમ લાગે છે. જે તેમ હોય તો પણ આ શાને આધારે તેઓ એમ માને છે તે જાણવું બાકી રહે છે.

મહત્વનો દાખલો

શ્રી સમ્મેત શિખરજી (પાર્શ્વનાથહીલ)નો પહાડ જૈનોની માલકીનો છે એ વાત જાણીતી છે. તેનો વહિવટ શેઠ આણંદજી કલ્યાણજીની પેઠી મારફત કરવામાં આવે છે. ત્યાં શિકાર કરવાની બીલકુલ મનાઈ છે.

તાજેતરમાં નવાગઢના રાજાએ ત્યાં એક હરણનો શિકાર કરવાથી પેઠોના પ્રતિનિધિઓ એ તરફ ગયા ત્યારે તેમના વિરૂદ્ધ કાયદેસર કામ લેવાનો વિચાર કર્યો હતો. છેવટે નવાગઢના રાજાની ઇચ્છાથી ધરમેજે પતાવટ કરવામાં આવી છે અને એવું નક્કી કરવામાં આવ્યું છે કે નવાગઢના રાજાએ પોતાના કૃત્ય માટે લેખિત માફી માગી ભવિષ્યમાં તેવું કાર્ય ન થાય તેની ખાત્રી આપવી અને વધુમાં રૂ. ૭૫૦) ની રકમ પેઠોની ઇચ્છા પ્રમાણે ધર્માદા ખાતામાં ખર્ચવા માટે કોર્ટમાં દાખલ કરવી. નવાગઢના રાજાએ આ બધું કમ્પલ રાખ્યું છે. બીજે જે ડેકાણે આવું બને ત્યાં ત્યાંના જૈન સંઘે પણ આવું પગલું ભરવું જોઈએ.

જિનાલયની માંડણી

(જિનાલય યનાવવા માટેની શાસ્ત્રીય વિચારણા)

લેખક-મુનિરાજ શ્રી દર્શનવિજયજી મહારાજ.

જિનાગમમાં જિનમંદિરનાં અનેક પ્રમાણો મળે છે. એ જ રીતે જિનમંદિર ક્યાં અને કેવા રૂપે યનાવવું? તેનાં પ્રમાણો પણ મળે છે. જિનમંદિર યંધાવનારને માટે આ વસ્તુ બહુ મહત્ત્વની છે. પ્રસ્તુત લેખમાં એ સંબંધી કંઇક વિચારણા કરવામાં આવી છે.

૧. શ્રી રાયપસેણી સૂત્રમાં જિનમંદિર માટે વ્યવસ્થિત ઉદ્દેશ્ય છે, જેનો સાર નીચે મુજબ છે:—

લયનની વચ્ચે મિત્ર ભિન્ન પ્રાસાદોથી વીંટાએલ મૂળ પ્રાસાદ (મુખ્ય રાજમહેલ) છે. તેનાથી ઇશાન ખૂણામાં ૧૦૦ યોજન લાંબી, ૫૦ યોજન પહોળી અને ૭૨ યોજન ઊંચી સુધર્મા સભા છે. જેને પૂર્વ દક્ષિણ અને ઉત્તરમાં સોળ યોજન ઊંચા અને ૮ યોજન પહોળા ત્રણ દરવાજા છે. તે ત્રણે દ્વારની સામે ૧૦૦ યોજન લાંબા, ૫૦ યોજન પહોળા અને ૧૬ યોજનથી વધુ ઊંચા એકેક મુખ્ય મંડપ છે. તેને પણ પૂર્વ દક્ષિણ તથા ઉત્તરમાં ચંદ્રવા, ધ્વજ તથા અષ્ટભાંગાલિક વાળા ૧૬ યોજન ઊંચા અને ૮ યોજન પહોળા ત્રણ ત્રણ દરવાજા છે. આ દરેક મુખમંડપની સામે સુંદર પ્રેક્ષા મંડપો છે, જેના મધ્ય ભાગમાં અખાડા અને અખાડાના મધ્ય ભાગમાં ખુરસી વગેરે આરામની સામગ્રીવાળી મણિપીઠિકાઓ છે. વળી પ્રેક્ષમંડપની બરાબર સામે પણ સોળ યોજન લાંબી સોળ યોજન પહોળી અને ૮ યોજન જાડી મણિપીઠા છે, જેની ઉપર તે જ માપથી લાંબા પહોળા અને ૧૬ યોજનથી વધુ ઊંચા સ્તૂપો છે.

આ દરેક સ્તૂપની ચારે દિશામાં ફરતી ૮ યોજન લાંબી પહોળી અને ૪ યોજન ઊંચી મણિપીઠિકાઓ છે, જેની ઉપર તીર્થંકરની ઊંચાઇએ ઊંચી પદ્માસનવાલી ઋષભદેવ, વર્ધમાનસ્વામી, ચંદ્રાનપ્રભુ અને વારિષેણપ્રભુની ચાર જિનપ્રતિમાઓ મિરાજમાન છે.

વળી એ સ્તૂપની સામે અનુક્રમે અન્યાન્ય સ્વર્ણમણિ પીઠિકાઓ, ચૈત્યવૃક્ષો, મહેન્દ્ર-ધ્વજો, પુષ્કરણિઓ, પદ્મવરવેદિકાઓ અને વનખડો વગેરે છે. (સૂત્ર ૧૩૮ થી ૧૪૨)

સુધર્મા સભામાં ૪૮ હજાર પેઠલીઓ, શય્યા, ગોમાનસીઓ અને ધૂપખેવતા ધૂપ ધાણાઓ છે. તથા અનેક સિંહાસન વગેરે છે. (સૂ. ૧૪૩)

સુધર્મા સભાની બરાબર વચ્ચે ૧૬ યોજન લાંબા પહોળા અને ૮ યોજન જાડા મણિપીઠપર ૬૦ યોજન ઊંચો, ૧ યોજન પહોળો, ૪૮ ખૂણા અને હાંસિયાવાળો તથા ધ્વજ છત્ર યુક્ત માણવક સ્તંભ છે, જેના મધ્ય ભાગમાં શિકા ઉપર ગોળ દાખાડાઓમાં દેવદેવોને અર્ચનીય, વંદનીય અને પર્યુપાસનીય જિન-સક્રિયો છે. (સૂત્ર. ૧૪૪, ૧૪૫)

ચૈત્યસ્તંભના ઇશાન ખૂણામાં મહેન્દ્ર ધ્વજ અને તેની જ પશ્ચિમે ચોખ્ખાળ આયુષશાળા છે. (સૂત્ર ૧૪૭, ૧૪૮)

અંક ૬]

જિનાલયની માંડણી

[૩૩૧]

સુધર્મા સભાથી ઇશાન ખૂણામાં ૧૦૦ ચોજન લાંબુ, ૫૦ ચોજન પહોળું, ૭૨ ચોજન ઉચું અને સુદર મોટું સિદ્ધાયતન-જિનાલય છે. જેના મધ્યમાં ૧૬ ચોજન લાંબી પહોળી અને ૮ ચોજન જડી મણિપાંદિકા પર તેટલો જ લાંબો પહોળો અને ૧૬ ચોજનથી વધુ ઉંચો દેવછંદો છે. જેની ઉપર ૧૦૮ જિનપ્રતિમાઓ બિરાજમાન છે. (સૂત્ર. ૧૪૯, ૧૫૦)

એ દરેક પ્રતિમાના પરિકરમાં છત્રધર, ચામરધર નાગ, ભૂત, યક્ષ અને કુંડધારકોની આકૃતિઓ છે.

આ ઉપરાંત પ્રત્યેક જિનપ્રતિમાની આગળ એકેક ઘંટ, કળશ, ભૃંગાર, અરિસો, ચાળ પાત્રી, સુપ્રતિષ્ઠ મનોગુલિકા, રત્નકરંડિયા, અશ્વકંઠ, ગજકંઠ, વૃષભકંઠ, પુષ્પમાળ, ચુર્ચુ ગંધ વસ્ત્ર, આભરણુ, સરસવ, મોરપીંછ, તેનાં પટલકો, સિંહાસન, છત્ર, ચામરો, તેલ હિંગલો. અંજન-તથા સુગંધી અત્તર આદિના ડબ્બાઓ અને ધુપધાણું રાખેલ છે. આ જિનાલયોની ઉપર અષ્ટમંગલિકો ધ્વજ તથા છત્રો વગેરેની સુંદર શોભા છે. (સૂત્ર ૧૫૧-૧૫૨)

શ્રીરાયપસેણી સૂત્રમાં સ્તૂપો, માણવકસ્તભ અને જિનાલયનું વર્ણન ઉપર પ્રમાણે મળે છે. જે ઉપરથી આપણને મંદિરની લંબાઈ, પહોળાઈ, ઉંચાઈ, પરિકર, મંદિરનાં ઉપકરણો, ચારે બાજુની ખુલ્લી જગા, શાંતિનું વાતાવરણ ઇત્યાદિ અનેક બાબતોનું જ્ઞાન મળે છે. અને કેવું જિનાલય નિર્માપિત કરવું જોઈએ, તેનો અદર્શ ખડો થાય છે.

૨. શ્રીજીવાભિગમ સૂત્ર પ્રતિપત્તિ ૩ ઉદ્દેશા બીજા સૂત્ર ૧૩૭ થી ૧૩૯ માં પણ સુધર્માસભા, દરવાજા, અખાડા, આરામગાહપીઠ, મણિપીઠ, સ્તૂપ, ચાર જિનેન્દ્રપ્રતિમાઓ, ચૈત્યટક્ષ, મહેન્દ્રધ્વજ, શ્યાલિ, માણવકસ્તભ પૂજનીક સક્રિયઓ, આયુધાગાર, જિનાલય દેવછંદો. ૧૦૮ જિનપ્રતિમા, પ્રતિમાનું સ્વરૂપ, પરિકરો અને ઉપકરણો આદિનું વર્ણન ઉપર પ્રમાણે જ છે. તદ્વાવત એટલો જ છે કે આ બધાં સ્થાનો લંબાઈ પહોળાઈ જડાઈ અને ઉંચાઈ વગેરેમાં શ્રીરાયપસેણીમાં દર્શાવેલ સ્થાનેથી આઠમા ભાગે છે. એકંદરે લંબાઈ પહોળાઈનો હિસાબ તેનાથી આઠમા ભાગે રાખી તે પ્રમાણે જ માંડણી વર્ણવી છે.

આ બંને સૂત્રોના પાઠોની આવી એકવાક્યતા મંદિરના વિધાન કાર્યમાં ધણો જ પ્રકાશ પાડે છે.

યદ્યપિ ભારતવર્ષમાં આવી જ્ઞાતનાં મંદિરો હાલ મૌઘુદ નથી. છતાંય કહેવાની જરૂર નથી કે મોઢેરાનું ધ્વસ્ત મંદિર આ વસ્તુની કંઈક અંશે ઝાંખી કરાવે છે.

૩ મંદિર બનાવવાનું મધ્યયુગીન વર્ણન વસ્તુસાર અધ્યાય ત્રીજામાં મળે છે. આમાં પણ ધણીખરી બાબતોનું સ્પષ્ટ વિધાન છે. જેમકે—

૧ આ મંદિર સંબંધી સવિસ્તર હકીકત બજાવા માટે જુઓ “શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ” માસિકના પ્રથમ વર્ષના આઠમા અંકમાં ૨૫૪ મા પાને તથા નવમા અંકમાં ૨૬૭મા પાને ઇપાયેલા પૂજ્ય મુનિરાજશ્રી ન્યાયવિજયજીનો “મહાતીર્થ મોઢેરો” શીર્ષક ઐતિહાસિક લેખ.

—ત્રી

[૩૩૨]

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ

[વર્ષ ૩]

જગતી પ્રાસાદમાં ચારે દિશાના હિસાબે અનુક્રમે છ, ત્રણ, નવ અને ત્રણગણી ગણવી (૪૮)

ગભારો, કોલી (કોરી), ગૂઢમંડપ, છ ચોકી (અથવા નવ ચોકી), રંગમંડપ, શ્રંગાર ચોકી અને દ્વારમંડપ (અલાનક); આ રીતે ક્રમ રાખવો. (૪૯) પ્રાસાદમંડપમાં ગૂઢમંડપ ત્રણત્રિક (નવચોકી), રંગમંડપ, શ્રંગારચોકી અને દ્વારમંડપ (ત્રણ મંડપ) નો ક્રમ ખતાવ્યો છે અને દરેકમાં અલાનકો (દ્વારમંડપ) કરવાનું ભારપૂર્વક જણાવ્યું છે.

જગતીમાં મૂળ મંદિરની જમણી બાજુ આગળ અને ડાબી બાજુ આગળ આઠ આઠ દેવકુલિકા બનાવવી જેમાં સિંહદ્વારની જમણી તરફથી સૃષ્ટિમાર્ગ વડે (પૂ. ૬૦ પ. ૭૦ દિશાના હિસાબે) ઋષભદેવ વગેરે ચોવિશ ભગવાનને સ્થાપવા. આવી રીતે ચોવીસ જિનાલય મંદિર બને છે (૫૬, ૫૭). પરંતુ એ યાદ રાખવું કે આ મંદિરમાં જે મૂળનાયક ભગવાન હોય તેના નંબરવાળી દેવકુલિકામાં સરસ્વતીને સ્થાપવી. એટલે ચોવીસે દેવકુલિકામાં વ્યવસ્થા રહેશે. (૫૮)

વચમાં મૂળમંદિર, જમણી બાજુ સત્તર, પાછળ નવ, ડાબી બાજુ સત્તર અને આગળ આઠ દેરીઓ (મધ્યમાં પ્રવેશદ્વાર રાખવું) એમ બાવન જિનાલય મંદિર બને છે (૫૯).

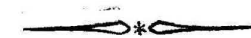
વચમાં મૂળ મંદિર, જમણી બાજુ પચ્ચીસ, પાછળ અગિયાર, ડાબી બાજુ પચ્ચીસ અને આગળ દશ દેરીઓ (મધ્યમાં પ્રવેશદ્વાર રાખવું.) એ રીતે બહોતેર જિનાલય મંદિર બને છે. (૬૦)

વાસ્તુસાર ગ્રંથના ઉપર ખતાવેલ વિધાનમાં પણ જિનાલય સંબંધી વ્યવસ્થા મળે છે. આખૂનો પ્રદેશ તથા નાની મારવાડનાં પ્રાચીન મંદિરો વાસ્તુસારોક્ત સ્થાપત્યના નમૂનાઓ છે.

૪. અર્ચાચીન કાળનાં જિનાલયો ઉપરનાં ત્રણે વિધાનોથી જૂદાં પડે છે. આ જૂદામનું કારણ મુસ્લીમ યુગ છે. ખાસ કરીને પૂર્વ અને ઉત્તરા પથનાં જિનાલયો બાહ્ય રૂપથી મુસ્લીમ સ્થાપત્યની અસરવાળાં છે. કેટલાંએક મંદિરો ધોંચોધોચ ધરોની હરોલમાં ખૂણે ખાંચરે કે બહારથી ન ઝોળખી શકાય એવા સ્વરૂપમાં બનેલાં છે. આ નાજૂક પરિસ્થિતિ પણ ઉપરનાં કારણે જ અખત્યાર કરાએલ છે. પરંતુ હવે એ રાજસત્તાનું કારણ રહ્યું નથી. આજે એ પ્રતિબંધો રહ્યાં નથી.

આજનો યુગ વસ્તીમાં ખરાં છતાં નિરાળાં શિલ્પશાસ્ત્ર સમ્મત, અને શાંતિનાં વાતાવરણથી ઓતપ્રોત એવાં જિનાલયોને પ્રસંદ કરે છે.

ઉપરની ટૂંક વિચારણા પછી એવા નિર્ણય પર આવવું પડે છે કે—હવે પછી રાયપસેણીસૂત્ર, જીવાભિગમ સૂત્ર અને વસ્તુસાર વગેરેમાં સૂચવેલ નક્કશાઓને સામે રાખી શિલ્પના આધારે શાંત વાતાવરણને પોષતાં જિનાલયો બનશે તો તેના દ્વારા જનતા પર વિશેષ ઉપકાર થવા સંભવ છે.



પરમાર્હત મહાકવિ શ્રી ધનપાલનું આદર્શ જીવન

લે. મુનિરાજ શ્રી મુશીલવિજયજી.

(ક્રમાંક ૩૧થી ૩૩)

ઉદ્યાનમાં કરેલો નિવાસ

એ સમયે વર્ષાઋતુની પૂર્ણાહુતિ થઈ ગયેલી હોવાથી શરદઋતુનો પ્રારંભકાળ ચાલતો હતો. વર્ષાઋતુમાં સારો વરસાદ પડેલો હોવાથી ઉદ્યાનની શોભા ઓર ખીલેલી હતી. કામદામ સુંદર ઝાડીઓની અને મનોહર આમ્રવૃક્ષોની નિખિડ ઘટાઓ જમી હતી. નાના પ્રકારનાં અનેક વૃક્ષોથી અને પુષ્પોના છોડવાઓથી ઉદ્યાન ઘણું જ ખીલી ઉઠ્યું હતું. પૃથ્વીમાતાએ લીલારંગની સાડી પરિધાન કરી હતી. વૃક્ષો, વેલડીઓ અને છોડવાઓ લીલાહમ ભાસતાં હતાં. જ્યાં જુઓ ત્યાં નયનરંજક લીલારંગ જ દ્રશ્યમાન થતો હતો. પવન પણ મીઠો મધુર અને સુંગધી વાતો હતો અને તેથી નીચે નમી ગયેલી ઝાળીઓ આમ તેમ ઝુલી રહી હતી. ઉદ્યાનમાં જ્યાં ત્યાં બેસવાનાં વિરામાસનો, રહેવાનાં સુંદર સ્થાનકો દેખાતાં હતાં. ગીતાર્થ-મુનિવરોથી પરિવરેલા સમર્થ વિદ્વાન શોભન મુનિએ સાયંકાળનો સમય થઈ ગયેલો હોવાથી આ ઉદ્યાનમાં જ નિવાસ કર્યો.

ધનપાલનો મેળાપ

પ્રભાતકાલ થતાં શોભનમુનિવરે નગરમાં પ્રવેશ કર્યો. આ વખતે શુભ સૂચક ચિહ્નો થવા લાગ્યાં. કોયળ આંખાના સુંદર વૃક્ષ પર બેસી પંચમ સ્વરથી આલાપ કરી રહી હતી. અને અનેકવિધ પક્ષિઓ પોતપોતાની મનોરમ ભાષામાં કીલકીલાટ કરી રહ્યાં હતાં. નગરમાં પ્રવેશ કરતાં જ ધનપાલ સામે મળ્યો. શોભનમુનિવરના આગળના દાંત મોટા હોવાથી તથા ‘આ મારો બન્ધુ છે’ એ પ્રમાણે તેમને નહીં ઓળખવાથી, તેમજ ધનપાલ સાધુઓનો કદો શત્રુ હોવાથી, તેણે હાસ્યપૂર્વક શોભનમુનિવરને મસ્કરીમાં પૂછ્યું:— “ગર્દભદન્ત । ભદન્ત । નમસ્તે !” [“ગર્દભ (ગધેડા) જેવા દાંતવાળા હે ભગવાન ! તમને નમસ્કાર”] આ પ્રમાણે સાંભળી તરત જ શોભનમુનિવરે તેને અનુસરતો જ જવાબ આપ્યો : “મર્કટકાસ્ય ! વયસ્ય ! સુખં તે ?” [“માંકડાના જેવા મુખવાળા હે મિત્ર ! તું સુખી છે ને ?”]

ધનપાલના મુખમાં તે વખતે તાંબૂલ હતું તેથી તે લાલ દેખાતું હતું. ધનપાલે વિચાર્યું કે એણે તો મને પોતાની વાકુકલાથી નિરુત્તર કરી દીધો, પણ મેં એને ગધેડા કીધો છતાં પણ એણે મને મિત્ર કહીને બોલાવ્યો, તેથી સભ્ય જણાય છે, મિત્રાચારી કરવાને લાયક છે, એમ અન્તઃકરણમાં વિચારી ફરી પૂછ્યું કે “કસ્ય ગૃહે વસતિસ્તવ સાધો !” [“હે સાધુ તમારી વસતિ (સ્થાન) કોને ઘેર છે ?”] શોભનમુનિવરે જવાબ આપ્યો કે— “યસ્ય રુચિસ્તદ્ગૃહે વસિષ્યે” (“મારા પર જેની રૂચિ હશે તેને ઘેર રહીશ”) આવું આશ્ચર્યજનક વચન સાંભળતાં જ ધનપાલને આનંદ આનંદ થઈ ગયો. અને તે હાથ બેડીને કહેવા લાગ્યો કે હે પ્રભો ! મારા ગૃહ—મંદીરમાં પધારો !

દિવ્ય ભુવનમાં ઉતારો

ધનપાળતું ગૃહમંદિર અનેક કળાઓથી અત્યંત લાગતું હતું. તે અનેક તરેહનાં તોરણોથી અને હુમ્મરોથી વિભૂષિત હતું. હીંગા, મણિ અને માણિકનાં રત્નજડિત તોરણો ભીતો પર લટકાવેલાં હતાં. ધમધમ આરીસાઓ જડેલાં હતાં. આરીસા એવી જાતના જડેલાં હતાં કે પાણીના હોઝ ભરેલા ન હોય એમ પ્રેક્ષકોને ભાસ થાય. નાની ચાંબલ ઓ પર જાતજાતનાં વાગિત્રો, અલંકારો અને અનેક તરેહનાં સુંદર આભૂષણોથી સજ્જ થયેલી પુતળીઓ દેખાતી હતી. કોઈક વ્યત્કરતી, કોઈક વાદ્ય વગાડતી, કોઈક પૂજન નિમિત્તે મનોહર પુષ્પોની છાયાડીઓ હાથમાં લીધેલી, કોઈક ઘંટ વગાડતી અને કોઈ પવન નાખતી આવનાર માણસને સત્કાર-સન્માન આપતી હોય તેમ દેખાતી હતી. તરેહ તરેહનાં સુંદર ચિત્રો ચીત્રેલાં હતાં. આ ગૃહભુવનના જુદા જુદા ખંડો પાડેલા હતા. ભૂમિકા ગૌઠાણથી લીધેલી હતી. બીજી બરણીઓની, દરવાજાઓની વિશાળતા અપૂર્વ હતી. “પધારો! પધારો!”ના માનભર્યા શબ્દો સાથે મુનિવરે ગૃહમંદિરમાં પ્રવેશ કર્યો અને યોગ્ય સ્થાનમાં ઉતારો કર્યો.

ત્યારબાદ ધનપાલે ભાવભરી વાણીથી સપરિવાર શોભનમુનીશ્વરને ભોજનને માટે નિમન્ત્રણ કર્યું. મુનિવરે સ્પષ્ટ શબ્દોમાં તેનો ઇન્કાર કર્યો. ઇન્કારતું કારણ આગ્રહભરી વિનતીથી પુછતાં મુનીન્દ્રે પ્રત્યુત્તર આપ્યો : “હે ધનપાલ, પૂર્વ મહર્ષિઓએ શસ્ત્રોની અંદર-સિદ્ધાંતની અંદર પ્રતિપાદન કરેલી એવી અમારી માધુકરી^૧ વૃત્તિ હોય છે. અમે કોઈને ત્યાં જમવા માટે તો શું પણ રસથી ભરપૂર એક ગૃહનો આહાર પણ અહણુ કરી શકતા નથી. મધુકર જેમ સુંગધી પુષ્પોની અંદર ફરી ફરીને કિલામણુ કર્યાં સિવાય રસને અહણુ કરે છે તેમ ઘરે ઘરે ફરીને અમે કાચુક ભિદ્ધાને અહણુ કરીએ છીએ.” એટલે ધનપાલે કહ્યું “તો હે પ્રભો, એ પ્રમાણે પણ આપના નિયમ મુજબ મારા ગૃહ-મંદિરની ભિદ્ધાને અહણુ કરી મને પાવન, કરો.” મુનિવરે કહ્યું કે “વર્તમાન યોગ.”

વિષ (ઝેરી) મોહક

મધ્યાહ્નકાલ થયો એટલે મુનિવરે જોયરી લેવાને પધાર્યા. માથા પર મધ્યાહ્નનો પ્રચ્છ્ડ સૂર્ય તપી રહ્યો હતો. આસપાસ આગ્નિના ઝાળ જેવી લૂવરતી રહી હતી. ધગધગતી પૃથ્વીપર ચરણ રથાપનાં ફરફાલાં પડતાં હતાં. જગતથી ન્યારા મુનિવરના શરીર ઉપર અપ્પ્યુત વેશ શોભી રહ્યો હતો. શરીર પર પડતા સૂર્યનાં પ્રચ્છ્ડ કિરણોથી જાણે ગંગા-સિન્ધુ વહેતી ન હોય એવો ભાસ થતો હતો—પ્રસ્વેદથી મુનિતું પ્રત્યેક અંગ રેખ્યેય બની ગયું હતું. છતાં પણ મુનિવર ઘરેઘરે ફરી ધર્મલાભના મનોહર શબ્દ સંભળાવી

૧ મજ્જેન્માધુકરી વૃત્તિ, મુનિમ્લેચ્છકુલાદપિ ॥

एकान्नं नैव भुञ्जीत, बृहस्पतिसमादपि ॥ १ ॥

महुकारसमा बुद्धा जे भवन्ति अणिस्सिया ।

નાનાપિણ્ડરયા દન્તા તેણ વુચ્છંતિ સાહુણો-ત્તિભેમિ ॥ ૫ ॥

(“માધુકરસમા બુદ્ધા યે ભવન્ત્યનિશ્ચિતા : ।

નાનાપિણ્ડરતા દાન્તાસ્તેન ઉચ્ચન્તે સાધવ : ”-इति ब्रवीमि ॥ ३ ॥

દશવૈકાલિકે

એનાલીશ દોષથી રહીત એવી શુદ્ધ ભિક્ષા અદણ કરી પોતાના સ્થાન તરફ પાછા ફર્યા. મુનિવરને આવતા જોઈ ધનપાલે ભક્તીભાવે વિનતી કરી એટલે મુનિ પધાર્યા કુદરતી રીતે એવું બન્યું કે એ જ દીસે કોમક દોષીએ એરી-મોદક ધનપાલને ત્યાં મેકસેલા. આ વાતની ધરમાં કોમકને પણ ખબર ન હતી ધનપાલ તે મોદક મુનિવરને આપવા લાગ્યો. મુનિવરે ના પાડી, અને કહ્યું કે આમાં એર નાખેલ છે. તપાસ કરનાં વાત સાચી ઠરી. ધનપાલને મુનિવર પર શ્રદ્ધા થઈ, અને કહેવા લાગ્યો કે—હે યોગીશ્વર! આપે શાથી બાણ્યું. મુનિવરે બાણ્યું કે પૂર્વ મહર્ષીએ જ્ઞેને માટે શાસ્ત્રોની અંદર પ્રતિપાદન કરેલું છે, તે તું સાંભળ:-

દૃષ્ટ્વાન્નં સવિષં ચકોરવિહગો ઘત્તે વિરાગં દૃશો ।

હંસઃ કુહ્નતિ સારિકા ચ વમતિ ક્રોશત્યજસ્રં શુકઃ ॥

વિષ્ટાં મુશ્વતિ મર્કટઃ ; પરમૃતઃ પ્રાપ્નોતિ મૃત્યું ક્ષણાત્ ।

ક્રૌંચો માઘતિ હર્ષવાંશ્ચ નકુલઃ પ્રીતિં ચ ઘત્તે દ્વિકઃ ॥ ૧ ॥

અર્થ : વિષવાળું અન્ન દેખીને ચકોર પક્ષી વિરાગને ધારણ કરે છે, અર્થાત્ નેત્રમાં વિલક્ષણતા ભાસે છે, હંસ શબ્દ કરે છે, સારિકા (મેના) વમન કરે છે, પોપટ વારંવાર ખેલે છે, વાંદરો વિષ્ટા કરે છે, કોયલ ક્ષણવારમાં મૃત્યુને શરણ થાય છે, ક્રૌંચ પક્ષી વૃત્ય કરે છે, નકુલ હર્ષવાળો થાય છે, અને વાયસ (ગાગડો) પ્રીતિવંત થાય છે. ”

આ પ્રમાણે વિષવાળું અન્ન દેખીને પક્ષીઓ અનેક પ્રકારનાં વિલક્ષણ ચિન્હ કરે છે. હે ધનપાલ! આ એરી મોદક દેખીને પાંજરામાં રહેલ ચકોર પક્ષીએ નેત્રોનાં દ્વાર બંધ કરી દીધાં તેથી મેં બાણ્યું કે—અવશ્ય આમાં વિષ છે. મુનિવરનું આવું માધુર્યશુણ્યથી ભરપૂર વચન સાંભળતાં ધનપાલ આશ્ચર્યમાં ગરકાવ બની ગયો.

એ રાત ઉપરાંતના હીંદમાં જીવોત્પત્તિ

ત્યારબાદ દહીં તૈયાર હતું તે લાવીને આપવા માંડ્યું. મુનિએ પૂછ્યું કેટલાક દિવસનું છે ? ધનપાલે કહ્યું ત્રણ દિવસ ઉપરાંતનું છે. હે ભદ્ર, તે અમારે કલ્પે નહીં. ત્યારે ધનપાલે પૂછ્યું, પ્રભો શું આમાં પણ જીવ છે ? આ તો દુનિયામાં અમૃત તુલ્ય મનાય છે, શુકન વગેરેમાં અશગણ્ય છે, નિર્મલ છે. મધુર છે. હે ધનપાલ, એ રાત્રિ ઉપરાંતના દહીંમાં જીવોત્પત્તિ હોય છે, એમ પૂર્વ મહર્ષીઓએ પ્રતિપાદન કરેલ છે. આ સાંભળી ધનપાલે કહ્યું, હે પ્રભો, આપ જ્ઞે આમાંથી હાલતા ચાલતા સાક્ષાત્ જીવો બતાવો તો હું જરૂર જૈન-ધર્મને અંગીકાર કરું ! નહીં બતાવો તો હું સમજશ કે સરલ લોકને છેતરવાને માટે આપે આ વેશ ધારણ કર્યો છે. ધનપાલનો ઉદયકલ નજીક આવી પહોંચ્યો હતા મિથ્યાત્વનો અન્તિમ સમય આવી પહોંચ્યો હતો. મુનિવરે યોગ્ય સમયનો લાભ લઈને બાણ્યું કે—હે ધનપાલ, હું તમને જીવો દેખાડી આપીશ તો તમારે તમને વચન અવશ્ય પાળવું પડશે ! ધનપાલે એનો સ્વીકાર કર્યો એટલે મુનિવરે લાખની એક થેપલી મંગાવી. તેની આસપાસ અત્યંત ચૂર્ણ નાખ્યું. પછી દહીંના પાત્રનું મુખ બંધ કરી તેના પડપે એક સૂક્ષ્મ છિદ્ર ક્યું. અને તે પાત્રને ધૂપમાં મૂકાવ્યું. છિદ્રમાંથી દહીં નીચે રહેલ લાખના અશ્વતામાં પડવા માંડ્યું. તેના પર દહીંના જવા રંગના સફેદ જંતુઓ દેખાવા લાગ્યા. આ જોઈ ધનપાલ આશ્ચર્ય ચક્રીત થઈ ગયો, તેને મુનિવર પર અત્યંત શ્રદ્ધા થઈ.

સમ્યક્ત્વ સૂર્યનો પ્રકાશ

મુનિવરે સુધાવર્ષિણી વાણીનો વરસાદ વરસાવ્યો. સૂર્ય દેવના ઉદયથી કમલની પાંખડીઓ ખીલે તેમ તેના હૃદયમાં સમ્યક્ત્વ સૂર્યનો પ્રકાશ થયો.^૧ મુનિવરે પોતાનો ઉપદેશ અંધ કર્યો. ધનપાલની ચક્ષુમાં હર્ષનાં આંસુઓ બરાયાં. તે કહેવા લાગ્યો કે હે પ્રભો, ખરેખર આપે મારો ઉદ્ધાર કર્યો. ક્રોધાવેશમાં આવી મેં ભોજ રાગની આરાથી આરવર્ષ પર્યંત મુનિવરોનો વિહાર અંધ કરાવ્યો. મેં અનહદ પાપ ઉપાર્જન કર્યું છે.^૨ હે કશ્ણાસિન્ધુ, તે પાપથી હું ક્યારે છુટીશ ! હે ધનપાલ તમારા આત્માનો હવે નિસ્તાર થશે, પોતાની ભૂલનો સ્વયં પશ્ચાત્તાપ થવો એ અહોભાગ્યની નિશાની છે. માનવ જ્યારે પોતાની ભૂલ સ્વયં જોઈ શકે છે, ત્યારે ક્ષણવારમાં જ સન્માર્ગને પાપ કરી શકે છે. તમારા સ્ફટિકવત નિર્મલ અંતઃકરણની વૃત્તિ સન્માર્ગ તરફ વળી એ જોઈ મને અનહદ આનંદ થયો છે. જગતમાં બાહ્ય કારણો કેટલેક અંશે આલંબન રૂપ છે. છતાં પણ અંતઃકરણની મલિનતા જ્યાં સુધી નાપુદ ન થાય અને તેમાંથી સદ્ગુણોની ભૌરભ ન નીકળે, ત્યાં સુધી કર્તવ્યની પ્રાપ્તિ થવી ઘણી જ કઠણ છે. માનવે પ્રથમ કર્તવ્યના સોપાન પર આવવું, એ સદ્ભાગ્યની પ્રથમ શ્રેણી છે.

જ્યાં સુધી સર્વ વિરતિનો સ્વીકાર ન કરી શકાય ત્યાં સુધી દેશ વિરતિની આરાધના કરવી શ્રેયસ્કર છે. પ્રાંતે ધનપાલે આ વ્રતનો સ્વીકાર કર્યો—તે પરમ શ્રાવક^૩ બન્યો. તેના હૃદય કમલની અંદર આ પ્રમાણે તેને નિશ્ચય થવા લાગ્યો: રાગ દ્વેષથી રહિત, લોકલોકના સર્વભાવોને જાણનારા તે જ મારા દેવ છે; કંચન કામિનીના ત્યાગી, શુદ્ધ પ્રશ્પક, પૂર્વ પુરૂષોના માર્ગને વહન કરનારા તે જ મારા ગુરુ છે અને જિનેશ્વર ભાષિત સૂક્ષ્મ તત્ત્વથી ભરપૂર, દયામય, અનેક મહાન પુરૂષોએ માન્ય કરેલો, જેની ત્રિપુટી શુદ્ધ છે એવો જે ધર્મ તે જ મારો ધમ છે. તેને જ હું સત્ય તરીકે સ્વીકારું છું. છેવટે, આ જ પોતાના લઘુ બન્યું છે, એ જાણુ થતાં ધનપાલના આનંદનો પાર ન રહ્યો. તે સ્નેહ પૂર્વક તેમને ભેટી પડ્યો.

૧ મિથ્યાત્વસ્યાવલેપોઽથ તદ્વાક્યેન વિનિર્યયૌ ॥

તદા કૃતીશ્વરસ્યાહિનાથમંત્રેવિષં યથા ॥ ૯૦ ॥ પ્ર૦ મ૦ પ્ર૦

૨ જિનેન્દ્રદર્શનં ધર્મમૂલં ભોજનૃપાજ્ઞયા ॥

યન્નિર્વાસ્ય મયોપાજિ, નાંતસ્તસ્ય મહાંહસઃ ॥ ૯૧ ॥ પ્ર૦ મ૦ પ્ર૦

૩—શ્રી જૈન સસ્તી વાંચનમાળા ભાવનગર તરફથી બહાર પડેલ ‘ધનપાલ પુરોહિત’ એ નામના પુસ્તકમાં શોભનાચાર્ય પાસે ધનપાલે આરવ્રત અંગીકાર કરેલાં છે, એમ લખેલ છે. તેને આધારે આરવ્રત અંગીકાર કર્યાં એ જણાવેલ છે.

૪—પરમાર્હત કવિ ધનપાલ સુસ્ત “અમણોપાસક શ્રાવક” થયા હતા એ ખાબતનો ન્યાયચાર્ય, ન્યાયવિશારદ શ્રીમાન ઉપાધ્યાયજી યશોવિજયજી મહારાજનો ધર્મપરીક્ષા નામનો અપૂર્વ ગ્રંથ સચોટ સાક્ષી પુરે છે:—

જુઓ—“ ધર્મ પરીક્ષામાં—” પરમશ્રાવકેણ ધનપાલેનાપ્યુક્તમ્ ” આ પ્રમાણે ઉલ્લેખ છે. ॥

ભારતનાં જૈન ગુફામંદિરો

કુલુહા હીલ યાને ભદીલપુર

લે. શ્રીચુત નાથાલાલ છગનલાલ શાહ

ભદીલપુર એ નામનું પુરાતન નગર ઇતિહાસકાળ પહેલાનું છે. જે ગયા જિલ્લામાં આવેલ છે. પુરાતન સમયમાં આ શહેર પૂર્ણ જાહેજલાલીએ હતું તે સંબંધીની ઐતિહાસિક ઘટના ઇતિહાસકાળ પહેલાંની “વસુદેવહિંડી” નામના ગ્રંથમાં મળી આવે છે જેમાં યાદવકુલ વંશીય રાજા વસુદેવના પરિભ્રમણનું વૃત્તાંત છે. આ ગ્રંથની રચના વિક્રમની પાંચમી શતાબ્દી આસપાસના સમયની થયેલ જણાય છે. અંતિમ તીર્થંકર મહાવીરદેવ જ્યારે શ્રમણ દશામાં હતા તે સમયે તેમનું પાંચમું ચાર્તુભાસ આ નગરે થયેલ હતું, જે સમયે આ નગર જૈનપુરી જેવું હતું. ઇ. સ. પૂર્વે છસોની શતાબ્દીમાં આ પ્રદેશ પર શિશુનાગ વંશના રાજ્યકર્તાઓનો અધિકાર હતો. તે પછીના સમયમાં મૌર્ય રાજ્યકર્તાઓની સત્તા નીચે આવેલ, જેમાં થઈ ગયેલ પ્રખ્યાત સમ્રાટ અશોક અને મહારાજા દશરથે આ જિલ્લાના “અરાબર પર્વત” માં આજીવિધ અને નિર્ઝંથોના નિવાસ માટે બનાવેલ

(અનુસંધાન પાના ૩૩૬માં તુ)

નિષેધનો પ્રતિકાર

ધનપાલને પરમ શ્રાવક બનાવી દીધ.ની વાત લોકોના સાંભળવામાં આવતાં લોકોનાં ટોળેટોળાં શોભન મુનિવરની અનહદ પ્રશંસા કરવા લાગ્યા. ધારાનગરીમાં આનંદનું પરિસીમા ન રહી. જૈનધર્મની વિજય પતાકા ફરકાવી ધર્મનો ડોકો બળવ્યો.

એકદા પૂર્ણિમાના સંધ્યા સમયે, ક્વીપર પરમ શ્રાવક ધનપાલે, ધારાનગરીમાં શ્વેતાંબર સાધુઓ નિરંતર વિચરી શકે અને લોકો જૈનધર્મથી વિમૂખ ન થઈ જાય એ હેતુથી, રાજા ભોજને જણાવ્યું કે— હે રાજેન્દ્ર, તમારા યશસ્વ ચંદ્રકિરણથી ગગનપર્યંત ધવલતા (શ્વેતતા) છવાઈ રહી છે, તમારો પ્રતાપ સૂર્ય સમાન છે. તમારી વિરતાથી સ્વયં શત્રુઓ આવીને પોતાના મુથુટોથી શિર ઝુકાવી રહ્યાં છે. તમારો અગાધ શક્તિ છે. તમારા દેશમાં અનેક મહાન પુરુષો છે. અનેક જાતની કળા કૌશલ્યવાળી વસ્તુઓ છે. તો હે નરેશ્વર, કંચનકામિનીના ત્યાગી, અજ્ઞાન તિમિરનો નાશ કરનાર, વિદ્વતાથી ભરપૂર એવા શ્વેતાંબર મુનિઓ શા માટે દૂર રહે!”

ધનપાલનું આવું આશ્ચર્યજનક વચન સાંભળી રાજાએ કહ્યું કે “હે ધનપાલ! ભલે શ્વેતાંબર સાધુઓ ધારાનગરીમાં વિચરે. એ દર્શનપર ગોણ દ્રેષ કરે?” સંધને આ વાતની ખબર પડતાં મહેન્દ્રસૂરીશ્વરને વિનંતી મોકલાવી, એટલે આચાર્ય મહારાજ સત્વર આવી પહોંચ્યા. ધરે ધરે જૈનધર્મના વિજયનાદો વાગી રહ્યા. આમ છેવટે આર વર્ષના દુકાળો વીતી ગયા બાદ રાજા ભોજની આજ્ઞાથી શ્વેતાંબર સાધુઓનો વિહાર ચાલુ થઈ ગયો. કેટલોક સમય વિત્યાબાદ સૂરીશ્વર અન્યત્ર વિહાર કરી ગયા.

અપૂર્ણ

ગુફાઓનું ઐતિહાસિક વિવરણ આ પત્રના ગયા અંકમાં આપેલ છે. ગયા જિલ્લો પુરાતન સમયથી મગધદેશ સાથે જોડાયેલ છે. ઇ. સ. પૂર્વે ૧૮૪ માં મૌર્યવંશીય રાજાના સેનાપતિ પૂષ્યમિત્રે પોતાના સ્વામીને મારી નાખી આ પ્રદેશ પર રાજ્ય કરેલ. ત્યારબાદ ઇ. સ. પૂર્વે ૧૫૭ માં કલિંગયુદ્ધવર્તિ મહારાજા પારવેસે મગધદેશ જીતી લીધેલ. પછીના સમયમાં ઇ. સ. ૩૩૦ માં ગુપ્ત રાજ્યકર્તાઓનું રાજ્યશાસન ચાલતું હતું.

ગયા જિલ્લામાં આવેલ “જૈનગુફાઓનું ઐતિહાસિક વિવરણ” આ લેખ સુધી વિદ્વાનો સમક્ષ રજુ કરેલ છે, ખાત્રી છે કે જૈનોના પુરાતન ઇતિહાસમાં અને પુરાતત્ત્વના અભ્યાસીઓ માટે ઉપયોગી થશે.

કુલુહા હીલ [ભદીલપુર]ની જૈન ગુફાઓ.

હઝારી બાગની સરહદમાં અને ગયા જિલ્લાની દક્ષિણ દિશાએ કુલુહા હીલ નામની ડુંગરી આવેલ છે. જૈના જૈનોના પુરાતન સાહિત્યમાં ભદિલપુર નામથી ઉલ્લેખો થયેલ મળી આવે છે. કુલુહા હીલ હટ્ટરગંજ નામના ગામના નેત્રલ ખુણામાં છ માઇલ દૂર ઉંચાણવાળા ભાગમાં આવેલ છે. ટેકરીની ઉંચાઇ સમુદ્રની સપાટીથી ૧૫૭૫ ફીટ છે. તેની નજીકમાં હટ્ટવારીઆ નામનું સ્થલ આ ટેકરીની પશ્ચિમ બાજુએ વસાયતવાળું આવેલ છે. આ ટેકરી હઝારીબાગના ઉંચાણવાળા વિભાગના ઉત્તર તરફના કીનારામાંથી એક હાર બંધ જે લાંબી પડતી પર્વતની હાર છે, તેમાં ઉંચા ટોચવાળા પર્વતના ભાગોને શિખર જેવો દેખાવ આપે છે. ટેકરીની ઉંચાઇ શેરધાટીની સપાટીથી જોતાં બહાર પડતા આકારને લીધે તે જ સ્થલમાં બહુ જ પ્રખ્યાત ગણાય છે.

આ ટેકરીની પશ્ચિમ દિશાએ એક પુરાતન ભીંત નવ ફીટની પહોલાઇ અને પંદર ફીટની ઉંચાઇએ આવેલ છે. ત્યાં આગળ એક દરવાજો છે. તેના ઇશાન ખુણામાં ૧૩૦ ફીટ દુર દુર્ગા ભગવતી કે જે કુલેશ્વરી નામથી ઓળખાય છે, તેમનું આ સ્થલે મંદીર આવેલ છે. આ મંદિરથી ૨૭૫ ફીટ દક્ષિણ દિશાએ ભીમભાર નામનો પ્રાચીન પથર છે. એવી ઐતિહાસિક કહેવત છે કે રાજા ભીમે આરામ લેવા માટે ત્યાં આગલ તે મુકેલ, જેને “ભીમભાર” નામથી ઓળખાવવામાં આવે છે. ભીમભારની ઉત્તરે ૫૪ ફીટ દૂર એક નાની ગુફા ચાર ફીટ ઉંચાઇએ અને ત્રણ ફીટની પહોલાઇએ ખડકના એક પુરાતન પથરમાંથી કોતરી કાઢેલ છે. ગુફાની અંદર તીર્થંકર પાર્શ્વનાથની મૂર્તિ સ્થાપિત થયેલ છે. મૂર્તિના મસ્તક પર નાગની ઢૂણાઓ છે તેમ પદ્માસન પણ સુરક્ષિત છે. આ મૂર્તિ બે ફીટની ઉંચાઇએ લીલાશ્ચવાળા કાળા પથરમાંથી બનાવેલ છે. તેનું શિલ્પકળાનું કામ જોતાં તે પુરાતન સમયની જણાઇ આવે છે. આ ગુફા મંદિરની પશ્ચિમ દિશાએ નજીકમાં એક નાની ખીજ ગુફા આવેલ છે. તેમાં પદ્માસને જૈન તીર્થંકરની મૂર્તિ સ્થાપિત છે. આ શિલ્પકામો એવા પ્રકારનાં કોતરવામાં આવેલ છે કે અહીંયાં ચુસ્ત યાત્રાળુઓનો પૂજ્યભાવ હોવો જોઈએ.

ભીમભારથી નીચે જતાં મંદિરના ભાગ તરફ નાનાં ખડકમાંથી કોતરી કાઢેલ સરોવર આવેલ છે. તેની પાસે એક નાનો સુરજકુંડ છે. સરોવરની પાસેના ભાગમાં બે નાની મૂર્તિઓ એક વૃક્ષ નીચે છે, જેની ઉંચાઇ દોઢ દોઢ ફીટની છે. બહારના મેદાનમાં રહેવાથી તે મૂર્તિઓ ખંડિત થયેલ છે. તેની આકૃતિ જૈન તીર્થંકરોની છે. આ બે

મૂર્તિઓ પૈકી એક મૂર્તિના પયાસનના નીચે એક શિલાલેખ વિક્રમ સંવત ૧૪૪૩ ની સાલનો કોતરાએલ છે. ઉપર બતાવેલ સુરજકુંડથી ૧૮૦ ફીટ ઉચે એક નાનું અર્વાચીન જૈન મંદિર તીર્થંકર પાર્શ્વનાથનું સુંદર કલામય આવેલ છે.

દશાવતાર નામનું, પત્થરમાંથી કોતરી કાઢેલ શિલ્પ કામ Dasavatar

પાર્શ્વનાથના મંદિરથી ઈશાન ખુણામાં ૨૪૦ ફીટ દુરના અંતરે “માડવ મડાઇ” Madava Madai નામની પુરાતન જગ્યા આવેલ છે. તેનાથી ૭૫૦ ફીટના અંતરે ઈશાન ખુણામાં “દશાવતાર” નામનું શિલ્પ કળામય કામ પત્થર પર કોતરાયેલ છે. આ શિલ્પ કામ પશ્ચિમ દિશા તરફ સીધા આકારવાળા ખડકના પત્થરના બે વિભાગમાં જણાઇ આવે છે. પરેલા વિભાગમાં એક બીડો ગોખલો છે. અને તે ગોખલામાં પાંચ પદ્માસને જુદી જુદી તીર્થંકરોની મૂર્તિઓ કોતરી કાઢેલી છે. આ મૂર્તિઓ સાડા દશ ઇંચની ઉંચાઇએ અને ઘુંટણ આગળ અગિયાર ઇંચ પહોલાઇએ છે. આ મૂર્તિઓ પુરાતન સમયની હોય તેમ તેના શિલ્પકામથી જણાઇ આવે છે. દરેક મૂર્તિના નીચે પયાસન છે તેમાંના મધ્ય ભાગમાં લાંછન-ચિહ્ન કોતરાયેલ છે. ચિહ્નો મહુ જ આછાં જણાય છે. તે ચિહ્ન પૈકી ઘોડો અને હાથી જેવા લાંછન જણાઇ શકે છે. ડાબુ આજુએથી ત્રીજી, ચોથી અને પાંચમી મૂર્તિઓ છે તેના પયાસનામાં દેવનાગરી લીપીમાં આજુ લખાણ કોતરાયેલ જણાઇ આવે છે.

ઉત્તર તરફ થોડેક અંતરે દૂર નીચાણના ભાગમાં ખડકના આકારના દ્વાર આગળ દશ ખીજ ઉપરની શૈલીની અને શિલ્પકામમય જિન તીર્થંકરોની મૂર્તિઓ આવેલ છે. તેમાં ડાબી આજુની પાંચ પદ્માસને ઉપરના માપની છે, જમણી આજુએ આવેલ મૂર્તિઓ કાઉસગ્ગ આકારે સવાબે ફૂટ ઉંચી છે. આ બધી મૂર્તિઓની છાતી ઉપર ચિન્હો કોતરાયેલ છે. તેની આજુઆજુ ચમર ઢાલતા ઇંદ્રો ઉભેલ છે. મૂર્તિઓના નીચેના લાંછનનો ભાગ ઘસાઇ ગયેલ છે, પરંતુ પયાસનના નીચેના ભાગમાં આજી દેખાવના સિંહો પ્રભુને નમન કરતા હોય તેમ દેખાવ આપે છે.

આકાશલોકન (Akasalocana) ખડક

દશાવતારથી એંશી ફીટ ઉંચે કુદરતી રીતે ભેગા થયેલ એક મ્હોટા પત્થરનો સમૂહ નીસરણી આકારે ગોઠવાયેલ છે. આમાંની એક શિલાની ટોચને “આકાશલોકન” કહે છે. તે પર પાદુકા આવેલ છે. આ પાદુકા એક પત્થર પર અડધા ઇંચની ઉંચાઇએ કોતરાયેલ છે. ઉક્ત પાદુકાની લંબાઇ આઠ ઇંચની છે. તેમાં શિલાલેખ નથી પરંતુ તેની સામઘનાં લીધે તે પ્રાચીન હોય તેમ જણાય છે. ત્યાંના પુરોહિતો આ પાદુકાને વીષ્ણુની માને છે. પ્રરંતુ ખરી રીતે તપાસતાં તે તીર્થંકરનાં ચરણ તરીકે પુરાતન સમયથી પૂજતી આવેલ હોય તેમ જણાઇ આવે છે. (Indian Antiquary Vol-xxx. 1901 pp. 81-95)

[અનુસંધાન ૩૪૦મા પાને]

ધર્મપ્રચારનો પ્રયત્ન

છેલ્લા કેટલાક સમયથી ગુજરાત બહારના દરેકરના કેટલાય પ્રદેશોમાં જૈનધર્મના પ્રચારના પ્રયત્નો ચાલી રહ્યાના સમાચાર મળે છે.

કોઇ કાળે જૈનધર્મના અનુયાયીઓની સંખ્યા લાખો અને કરોડોના આંક સુધી પહોંચી ગઇ હતી અને ભારતવર્ષના દરેકે દરેક પ્રદેશમાં પ્રભુ મહાવીર દેવના ઉપાસકો મળી આવતા હતા. કાળક્રમે આજે એ સ્થિતિ નથી રહી; એ સ્થિતિમાં અને અત્યારની સ્થિતિમાં વિશાળ અંતર પડી ગયું છે. એ કરોડોની સંખ્યા આજે અમુક લાખમાં સંકોચાઇ ગઇ છે અને કેટલાક પ્રદેશો તો એવા બની ગયા છે કે જ્યાં જૈનધર્મનું નામ સાંભળવું કે જૈનધર્મનો ઉપાસક મળી આવવો મુશ્કેલ બની ગયું છે.

સમાજની આ સ્થિતિ બહુ દર્દમરી છે, છતાં એક કડવા સત્યની માફક તેનો સ્વીકાર કર્યા વગર ચાલે એમ નથી. ખીજી તરફ આવી નિરંતર ધસાતી જતી સ્થિતિ તરફ દુર્લક્ષ્ય કર્યું પણ પાલકે એમ નથી; એ સ્થિતિમાં પલટો આવે એવા કંઈક સક્રિય પ્રયત્નો ગતિમાન કરવા અનિવાર્ય થઇ પડે છે. અને તેથી જ કોઇ પ્રદેશોમાં જે કાંઇ થોડાં ધણા અંશે પણ આવા પ્રયત્નો જરી થયા હોય, પ્રભુ મહાવીર દેવના પરમ પવિત્ર ધર્મનો સંદેશો ફેલાવવા માટે જે કંઈ કોશિશ કરવામાં આવતી હોય, માર્ગભૂલ્યા મુસાફરની માફગ સદ્ધર્મના પવિત્ર માર્ગથી દૂર થયેલા માનવીઓને સાચો ધર્મમાર્ગ બતાવવાનો જે કંઈ પ્રયત્ન થતો હોય અને વૈભવ વિલાસ અને મોજ શોખમાં આગળ વધતા આ પૌદ્ગલિક સમયમાં માનવજાતને ત્યાગતા માર્ગે અને આત્માના માર્ગે દોરી શકે એવા પવિત્ર ધર્મનો પ્રચાર કરવા માટે જે કંઈ કાર્ય થતું હોય તે દરેક રીતે આવકારદાયક ગણી શકાય !

આવા ધર્મપ્રચારના પ્રયત્નો અત્યારે તો ખાસ કરીને જે પ્રદેશોમાં વિશેષ રીતે થઇ રહ્યા હોવાનું જણાય છે. એક સુદૂર પૂર્વમાં બંગાળામાં માનભૂમ જિલ્લામાં અને ખીજે સુદૂર ઉત્તરમાં મેરઠ જિલ્લા અને તેની આસપાસના પ્રદેશમાં. બંગાળામાં માનભૂમ જિલ્લામાં આ કાર્ય સરાફ જતીને જૈનધર્મનો સંદેશ પહોંચાડીને પ્રભુ મહાવીર દેવ પ્રરૂપેલ સન્માર્ગનો યોષ પમાડવાના આશયથી ચાલી રહ્યું છે. ત્યાં આ કાર્ય મુખ્યત્વે પૂજ્યપાદ ઉપાધ્યાયજી શ્રી મંગળવિજયજી મહારાજ અને તેમના શિષ્યે ઉપાડી લીધું છે અને તેમને દરેક રીતે મદદ

(અનુસંધાન પાના ૩૩૬માં તું)

અર્વાચીન દુર્ગાદેવીનું મંદિર અને ઐશ્વ મૂર્તિવાળા વિભાગો સિવાય આ ટેકરી પર જે પુરાતન શિલ્પકામોના અવશેષો છુટા પડેલા છે તે અવશેષો જૈનોના છે. તે પરથી આ પવિત્ર ટેકરી પુરાતન કાળથી જૈનોનું વિખ્યાત તીર્થ હોવાનું સાબિત થઇ શકે છે. બહાઈલપુરની જૈન સાહિત્યોમાં તીર્થ તરીકેની ગણના કરેલ છે. જ્ઞાના જૈન તીર્થકર શીતલનાથનાં ચવન, જન્મ, દીક્ષા અને કેવળ કલ્યાણકે થએલ આ ભૂમિ છે. આવા પુરાતન તીર્થનો ઉદ્ધાર કરવો એ જૈનોની પ્રથમ ફરજ છે. વર્તમાનમાં આ કુલુહા હીલ નામથી ઓળખાતી ટેકરીની માલીકી શ્વેતામ્બર જૈનોની છે.

કરવા માટે “શ્રી જૈનધર્મ પ્રચારક સમા” નામની એક સંસ્થા કલકત્તામાં અને ઝરિયામાં કાયમ કરવામાં આવેલ છે. આ સંસ્થા સમયે સમયે આ કાર્યમાં મદદ આપીને એ કાર્યને વેગ આપે છે. મેરઠ અને તેની આસપાસના પ્રદેશમાં ચાલી રહેલું કાર્ય પલ્લીવાલો, અગ્રવાલો અને આર્યસમાજીઓને જૈનધર્મ પમાડવાના આશાયથી ચાકી રહ્યું છે. આ કાર્ય મુખ્યત્વે પૂજ્યપાદ મુનિ મહારાજ શ્રી દર્શનવિજયજી, જ્ઞાનવિજયજી તથા ન્યાયવિજયજી મહારાજ કરી રહ્યા છે. આ અને આવા ખીજા દરેક કાર્યમાં સહાય આપવા માટે શ્રી રાજનગર અમદાવાદમાં “શ્રી જૈનધર્મ પ્રચારક સમિતિ” ની સ્થાપના કરવામાં આવી છે.

માનભૂમ જીલ્લો અને તેની આસપાસના પ્રદેશમાં જે સરાક જાતિને જૈનધર્મનો યોગ્ય પમાડવાનો પ્રયત્ન ચાલી રહ્યો છે તેની સંખ્યા અત્યારે લગભગ ત્રણ લાખ જેટલી છે. અને એ જાતિ સંબંધી જે કંઈ વિગતો મળે છે તે બહુ જ રસ ભરી અને અર્થ-સચ્ચ છે. એ જાતિ સંબંધી સરકારી ખાતાએ શોધખોળ કરીને અનેક વિગતો બહાર પડી છે અને એ શોધખોળના અંતે એ નિશ્ચિત કરવામાં આવ્યું છે કે “સરાક” એ “શ્રાવક” શબ્દનું વિકૃત થયેલું રૂપ છે. એટલે જેને સરાક જાતિના નામથી ઓળખવામાં આવે છે તે વાસ્તવિક રીતે શ્રાવક જાતિ હતી. આ આખી જાતને આવી રીતે શ્રાવક માનવાનાં અનેક સખળ કારણો મળે છે. સૌથી મહત્વની વાત તો એ છે કે જ્યાં બંગાળનો આખો પ્રદેશ માંસાહારી બની ગયો છે ત્યાં એ માંસાહારીઓની વચ્ચેવચ્ચ સૈકાઓથી રહેવા છતાં આ આખી જાતી બિલકુલ નિરામિષ આહારી છે. કેવળ આટલું જ નહીં, લસણ દુગળી જેવા કંદમૂળના બક્ષણુને અને રાત્રિજોજનને પણ તે દોષારૂપ ગણે છે. (જે કે માંસાહારની માફક આનો સર્વથા ત્યાગ જેવામાં નથી આવતો.) માંસાહાર, કંદમૂળબક્ષણુ અને રાત્રિજોજન આ ત્રણ દોષોના ત્યાગ માટે જૈન શાસ્ત્રોમાં ખૂબ ભાર દેવામાં આવ્યો છે અને ખીજા ધર્મો કરતાં જૈનધર્મના જીવન વ્યવહારના નિયમોમાં આ નિયમો વિશિષ્ટ રીતે તરી આવે છે. વળી સરાકોના ગોત્રોમાં ઋષભદેવ, શાંતિદેવ એવાં નામનાં ગોત્રો પણ મળે છે. સરાક જાતિ પોતાના કુળદેવતા તરીકે પ્રાર્શ્વનાથને માને છે અને સમ્મેતશિખર તીર્થને બહુ જ સન્માનની દ્રષ્ટિએ જુએ છે. આ બંધી વસ્તુસ્થિતિનો વિચાર કરતાં સરાક જાતિ એ શ્રાવકની જાતિ હતી એમ જે નિર્ણય કરવામાં આવે છે એ બહુ જ વ્યાજબી જણાય છે. અત્યારે આ જાતિ ખીજા કોઈ પણ ધર્મને પોતાના વિશિષ્ટ ધર્મ તરીકે નથી સ્વીકારતી એ બિના પણ નોંધવા જેવી છે.

બંગાળ જેવા માંસાહારી પ્રદેશમાં એક નાનકડી જાતિ આટલી હદ સુધી પોતાની નિરામિષતાને ટકાવી શકે એમાં કુદરતનો કોઈ અજબ સંકેત કે સહાય હોય એમ લાગ્યા વગર નથી રહેતું, જેના પૂર્વ પુરૂષોને સદ્ધર્મનાં સાચાં તત્ત્વોનો યોગ્ય મળ્યો હોય તેના વારસોમાં પણ એ યોગ્યતા વારસો મળ્યા વગર નથી રહેતો. જૈનધર્મ એમના ઉપર કેટલી સચોટ છાપ પાડી હશે કે એનાં ચિન્હો આજે સૈકાઓ પછી અને ખીજા ઓનાં અનેક આક્રમણો પછી પણ ભૂંસાઈ શકાયું નથી ! જૈનધર્મનાં તત્ત્વોની મહત્તાનો આ એક સખળ પૂરાવો છે.

આમણે એ જાણીએ છીએ કે અત્યારે ભારતવર્ષમાં જે રૂપની જૈન સંસ્કૃતિની ગંગા વહી રહી છે તેનો પ્રથમ પ્રવાહ મગધ અને બંગાળના પ્રદેશમાંથી પ્રભુ મહાવીર

દેવે પ્રવાહિત કર્યો હતો. આજે માંસાહારમાં ડુબી ગયેલા એ પ્રદેશો એક વખતે પરમાત્મા મહાવીરદેવ અને ભગવાન યુદ્ધના અહિંસાના ઉપદેશના મુખ્ય પ્રદેશો હતા. એ પ્રદેશોનો ખૂણેખૂણો તેઓના ચરણોથી પવિત્ર થયેલો હતો. કમનસીબે આજે એ જ પ્રદેશ માંસાહારની પરાક્રામ્યે પહોંચ્યો છે. એવા ભયંકર પ્રદેશમાં પણ સરાકળતિ જે રીતે પોતાનું વર્ચસ્વ સાચવી શકી છે એ બહુ જ સૂચક અને આશાસ્પદ છે. સંભવ છે કે કોઈક કાળ એવો પણ આવે જ્યારે ફરીને એ પ્રદેશ અહિંસાના માર્ગે ચાલવાનું સ્વીકારે! અસ્તુ.

મેરઠ જીલ્લો અને તેની આસપાસ ચાલી રહેલું કાર્ય માર્ગભૂલ્યાને માર્ગ ખતાવવા જેવું છે. જેઓ એક વખતે જૈનધર્મને પાળતા હતા, જેઓના જૈન હોવા સંબંધમાં અનેક ઐતિહાસિક પુરાવાઓ મળી આવે છે તેમને તેમના મુખ્ય ધર્મ તરફ વળવાનું કાર્ય ત્યાં થઈ રહ્યું છે. આમાં મુખ્યત્વે પલ્લીવાલો અને અય્રવાલોનો સમાવેશ થાય છે. તેઓમાંના કેટલાક દિગંબર ધર્મના માર્ગે વળી ગયેલા છે. જ્યારે કેટલાક અજૈન માર્ગના અનુયાયી બની ગયા છે. કેટલાક આર્યસમાજ બની ગયેલાઓનો પણ એમાં સમાવેશ થાય છે. આ પ્રયત્નમાં દિગંબરોને ધર્મનો યોગ્ય પમાડવાનો હોવાથી એ કામ કંઈક કપરું છે. (જ્યારે સરાકળતિના પ્રતિબોધનું કાર્ય એટલું કપરું નથી પણ બહુ જ મોટું છે) આવો પ્રયત્ન કરનારને વારંવાર અનેક પ્રકારનો વિરોધ અને ઉપદ્રવ સહન કરવો પડે છે.

આ એ પ્રદેશોના ધર્મપ્રચાર ઉપરાંત કંઈક એવા જ પ્રકારનું (જે કે તેના જેટલું તો નહીં જ) ધર્મ પ્રચારનું કાર્ય માળવાના કેટલાક પ્રદેશોમાં પૂજ્યપાદ મુનિમહારાજ શ્રી ચંદ્રસાગરજી મહારાજ આદિ મુનિરાજો કરી રહ્યા છે. તેઓના કાર્યપ્રદેશ મુખ્યત્વે સ્થાનક-માર્ગી સંપ્રદાયની આપણા ધર્મ ઉપર જે ખરાબ અસર થઈ ગઈ છે, અને એના પરિણામે જે લોકો પરમતારક પ્રભુસૂત્રના વિરોધી બન્યા છે તેમને સાચો ધર્મ સમજાવવાનો છે.

અચારની આપણી ઘસાતી સ્થિતિ વચ્ચે ધર્મપ્રચારનો આવો જે કંઈ પ્રયત્ન થતો હોય તેને દરેક રીતે અપનાવવો જોઈએ અને તેને જોઈતી દરેક સહાય આપવી જોઈએ. વળી દૂર દૂરના આવા ધર્મ વિમુખ બનતા જતા પ્રદેશોને જેમ જેમ પૂજ્ય મુનિ મહારાજોનો ઉપદેશ મળતો જશે તેમ તેમ ધર્મનો વધુ પ્રચાર થશે. અલપત અજે કેટલાય પ્રદેશો એવા બની ગયા છે કે જ્યાં પૂજ્ય મુનિ મહારાજોને વિહાર કરવામાં અપાર અડચણો આવે—કોઈ કોઈ સ્થળે તો વિહાર અશક્ય જેવો લાગે! પણ ખીણ બાજુ તેવા પ્રદેશોની ઉપેક્ષા કરવામાં પણ બહુ જોખમ રહેલું છે, એટલે ધીમે ધીમે જ એવા પ્રદેશો તરફ વિહાર કરવામાં આવે તો એવો સમય જરૂર આવશે કે જ્યારે, આજે વિહાર કરવા માટે અયોગ્ય લાગતા પ્રદેશોમાં વિહાર કરવાનું દરેકને માટે શક્ય બનશે અને પરિણામે ધર્મ વિમુખ બનતાં ક્ષેત્રો ધર્મના જયઘોષથી ગાજી ઉડશે!

ધર્મપ્રચારના આવા પ્રયત્નમાં કે આવા પ્રયત્ન પાછળ કેવળ સંખ્યા વધારવાનો કે એવો ખીજો કોઈ હળવો આશય નથી—ન જ હોઈ શકે! જૈનધર્મના આ પ્રચાર પાછળ અહિંસાના ઉદ્ધારનો મહાન આશય રહેલો છે. જેમ જેમ આ પ્રચારમાં સફળતા મળતી જશે તેમ તેમ અહિંસાનો વિશેષ ઉદ્ધાર થતો જશે! અહિંસાના માર્ગે સમગ્ર માનવજાતનાં અગ્રે, સમગ્ર વિશ્વની શાંતિ સાધી શકાય એમ છે એ વાત આજે સમજાવવી પડે એમ

નથી. અને જૈનધર્મની સુક્રમાતિસુક્રમ અહિંસાની તોલે આવી શકે એવી અહિંસા બીજા કયા ધર્મે પ્રરૂપી છે? એટલે માનવજાતના ભક્ષાની દૃષ્ટિએ પણ આ અહિંસાનો ઉદ્ધાર સાધવા માટે ધર્મપ્રચારનો પ્રયત્ન આપણા માટે અનિવાર્ય થઈ પડે છે; જો આપણે એ પ્રયત્નમાં પાછા પડીએ તો આપણે ફરજ ભૂલ્યા ગણાઈએ!

બીજાઓમાં ધર્મપ્રચારનો પ્રયત્ન કરવાની સાથે સથે બીજાઓ તરફથી આપણા ઉપર જે જે કંઈ આક્રમણ કરવામાં આવે તેનો યોગ્ય ઉત્તર આપવો એ પણ ધર્મપ્રચાર માટે બહુ જરૂરી છે અને તેથી શ્રી. રાજનગર-અમદાવાદમાં વિ. સં. ૧૯૯૦ની સાતમાં મંગલ અખિલ ભારતવર્ષીય જૈન સ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક મુનિ સન્મેલનના દસમા દરવા પ્રમાણે “શ્રી જૈનધર્મ સત્યપ્રકાશક સમિતિની” સ્થાપના કરવામાં આવી છે. આ સમિતિનો ઉદ્દેશ બીજાઓ તરફથી આપણાં ધર્મ ઉપર કે તીર્થો ઉપર થતા આક્ષેપોનો યોગ્ય પ્રતીકાર કરવાનો છે. આ ઉદ્દેશને પહોંચી વળવા માટે સમિતિ તરફથી “શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ” નામક માસિક પ્રગટ કરવામાં આવે છે અને એ રીતે સમિતિ પોતાથી બનતું એ ક્ષેત્રમાં કાર્ય કરી રહેલ છે. આ મુનિ સન્મેલન વખતે જ, સન્મેલનમાં ભાગ લેતા દીલ્હી જેવા દૂરના પ્રદેશમાંથી પંચારંગ પૂજ્ય મુનિ મહાગજ શ્રી દર્શનવિજયજી આદિના મુખથી મેરઠ જીલ્લો અને તેની આસપાસના પ્રદેશમાં આવતા ધર્મપ્રચારના સમાચાર સાંભળી એ અને એવા બીજા દરેક પ્રયત્નમાં વેગ આપવા માટે રાજનગર-અમદાવાદમાં “શ્રી જૈન ધર્મ પ્રચારક સમિતિ”ની સ્થાપના કરવામાં આવી હતી. આ સમિતિએ સરધનામાં એક જિનાલય બંધાવી આપ્યું છે તથા બીજા પણ કેટલીક સહાયતા કરી છે. આપણે ઇચ્છીએ કે આ સમિતિ પોતાના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ આપે અને તે દિશામાં પ્રયત્ન કરતા મુનિરાજને વધુ ને વધુ પ્રોત્સાહન આપે! અસ્તુ.

પરધર્મીઓની વચ્ચે રહીને ધર્મ પ્રચારનું કાર્ય કરવું કેટલું કઠિન છે તે સૌ સમજી શકે એમ છે. આવી સ્થિતિમાં આરા કપરા કામને સફળ કરવા માટે જે કોઈ પ્રયત્નશીલ હોય તેને દરેક રીતે, સમાજની દરેક વ્યક્તિએ પોતાથી બનતો સહકાર આપવો જોઈએ. આપણા સમાજની દરેક દરેક વ્યક્તિ આ કાર્યની મદત્ત સમજે અને તેમાં પોતાના તન, મન ધનનો વધારેમાં વધારે ફાળો આપી અહિંસાના ઉદ્ધારના આ પ્રયત્નને વધુ વેગવંત બનાવે! અસ્તુ!!!

P.

સુધારો

ગયા અંકમાંના શ્રીયુત નાથાલાલ છગનલાલ શાહના “બરાબર પર્વત” પરનાં જૈન ગુફા મંદિરો શીર્ષક લેખમાં જ્યાં કર્ણુઓપાર છપાયું છે ત્યાં કર્ણુઓપાર વાંચવું.

પંચ મહાવ્રત

[તેની પચીસ ભાવના અને બીજા નિયમો]

સંગ્રહક-શ્રીયુત મોહનલાલ દીપચંદ ચોક્સી

જૈન ધર્મનું સાધુપણું અતીવ દુષ્કર છે, શાસ્ત્રકારો અને કવિઓએ તેને ખાંડાની ધારની ઉપમા આપી છે. એ સાધુઓ અને બીજા બાવા કે કુધરામાં મોઢું અંતર છે. એ જોની સરખામણી ન થઈ શકે. જૈનસાધુએ પોતાની સાધુતાને ઉજ્જવળ રાખવા સતત નમસ્કરહેવાનું હોય છે અને તેના અંગે અનેક પ્રકારના નિયમોનું કડક રીતે પાલન કરવાનું હોય છે. સાધુઓના પંચ મહાવ્રતમાં છું મહત્ત્વ છે તે એ પંચ મહાવ્રતના પાલન માટે કરવામાં આવેલ નિયમમાંથી કંઈક સમજી શકાય છે. એટલે આ રથળે એ પંચ મહાવ્રતની પચીસ ભાવનાઓ અને બીજા નિયમોનો સંગ્રહ કર્યો છે.

પાંચ મહાવ્રતનો ૨૫ ભાવનાઓ

૧ પ્રાણુતિપાત વિરમણુ વ્રત (અહિંસા વ્રત)ની પાંચ ભાવનાઓ-(૧) મનો-યુષ્તિ (મનને ગોપવવું-તરંગત્રેણી પર અંકુશ રાખવો), (૨) એષણુ સમિતિ, (બેતાલીશ દોષરહિત આહારાદિક લેવા), (૩) આદાનભંડ નિક્ષેપણુ સમિતિ (વસ્ત્રપાત્ર વગેરે યત્ના પૂર્વક લેવા). (૪) ધર્યા સમિતિ (ઉપયોગ સહિત ચાલવું) અને (૫) અન્ન પાણી વગેરે લેનાં તે જોઈને લેવા વડે કરીને-ક્રિત પાંચ પ્રકારે કરીને હ મેશાં અહિંસા-દયા ભાવવી.

૨ મૃષાવાદ વિરમણુ વ્રત (સત્ય વ્રત) ની પાંચ ભાવનાઓ-(૧) હાસ્ય (૨) લોભ (૩) ભય (૪) કોધથી મૃષા યાને જુદું ન જોલવું અને (૫) વિચાર પૂર્વક જોલવું. એમ પાંચ પ્રકારે વાણીવ્યવહાર આચરતાં સત્યવ્રત ભાવવું યા ચિંતવવું.

૩ અદત્તદાન વિરમણુ વ્રત (અસ્તેય વ્રત) ની પાંચ ભાવનાઓ-(૧) અવ-ગ્રહ માગવો (પ્રમાણુસર જગા માંગવી), (૨) બરાબર જોઈ તપાસી વિચારી અવગ્રહ માગવો, (૩) નિરતર ગુરૂની રજા લઈ ભાતપાણી વાપરવા, (૪) સાધર્મિક પાસેથી અવ-ગ્રહ માગવો અને (૫) અવગ્રહની મુદત ઠરાવવી એ પાંચ પ્રકારે અસ્તેય વ્રત ભાવવું.

૪ મૈથુન વિરમણુ વ્રત (બ્રહ્મચર્યા વ્રત) ની પાંચ ભાવનાઓ-(૧) સ્ત્રી નપું-સક તથા પશુવાળી વસતી અને કુડ્યાંતર વસતિનો તથા એક આસનનો ત્યાગ કરવો, (૩) સરસ સ્નિગ્ધ આદાર તથા અતિ આહાર ન લેવો, (૪) સરાગે (રાગ સહિત) સ્ત્રી કથા કરવી નહીં અને (૫) પૂર્વે કરેલી કામક્રીડા સંભારવી નહીં. એમ પાંચ બેદે સંપૂર્ણ શીયળવ્રત ભાવવું.

૫ પરિચ્છેદ ત્યાગ (અક્રિયનત્વ) ની પાંચ ભાવનાઓ-(૧) શબ્દ, (૨) રૂપ, (૩) રસ, (૪) ગંધ, (૫) સ્પર્શ, એ પાંચમાં હ મેશાં રાગદ્વેષ છોડવા.

ભાવ સાધુના ૭ લિંગ

૧. માર્ગાનુસારિણી ક્રિયા-મોક્ષ માર્ગને અનુસરતી પ્રત્યુપેક્ષણુદિ કરણી.

૨. ધર્મમાં ઉત્કૃષ્ટ શ્રદ્ધા-શ્રુત ધર્મમાં અને ચારિત્ર ધર્મમાં તીવ્ર અભિલાષા ધરવી તેના ૪ બેદ (૧) વિધિસેવા (૨) અતૃપ્તિ (૩) શુદ્ધ દેશના (૪) અસ્ખલિતપરિશુદ્ધિ.

૩. પ્રજાપત્નીયપાણ્યું—આગમોક્ત યુક્તિઓ વડે અન્યને સમજાવવાની કુશળતા.
૪. ક્રિયામાં અપ્રમાદ—સાધુ માર્ગની કરણી મદ્દ વિષય કપાય (વકયા નિષ્ણ ૩૫ પાંચ પ્રમાદ રહિત કરતાં થકાં શુદ્ધ સંયમનું પાલન કરવું.
૫. શક્ય અનુષ્ઠાનનો આરંભ—શરીરની શક્તિ મુજબ તપાદિ ક્રિયા કરવી.
૬. ગુણાનુરાગ—અરણ્ય—કરણ્ય સિત્તરી, તથા આગમોક્ત મૂળ ઉત્તર ગુણોમાં પ્રીતિ.
૭. ગુરુઆરાધા આરાધન—ગુરુ પ્રત્યે અહુમાન ધરતો, સદા આરાધા ઉદ્ઘાવવામાં તપર રહે અને ચારિત્ર ધર્મ નિહંદૃત્તિએ પાળે.

જ્ઞાનાચારના આઠ પ્રકારમાંના પ્રથમ કાળ નામના આચારનું સ્વરૂપ:—યોગકાળે શ્રુત બળ્યવું, બળ્યવવું તથા વ્યાખ્યાન કરવું તે શ્રુત ધર્મનો પ્રથમ આચાર છે. અગિયાર અંગ અને ઉત્તરાધ્યયન સુત્ર વગેરે કાલિકશ્રુત કહેવાય છે. તે દિવસે તથા રાત્રે પહેલી અને ચોથી પોરસી (પ્રહર) માં બળ્યવું ગણ્યવું અને દશવૈકાલિક વગેરે તથા દૃષ્ટિવાદ ઉત્કાલિક શ્રુત કહેવાય છે. તેના બળ્યના વગેરેનો કાળ સર્વ પોરસીનો છે. તેમાં પણ સૂત્રની પોરસીમાં સૂત્ર બળ્યવું અને અર્થની પોરસીમાં અર્થ અથવા ઉત્કાલિક શ્રુતાદિ બળ્યવું. દિવસ તથા રાત્રિની પહેલી અને છેલ્લી પોરસીમાં અસ્વાધ્યાય (અસજ્જય) ને અભાવે બળ્યાય તેથી તેનું નામ કાલિક કહેવાય છે. કાલિકનો શબ્દાર્થ એવો છે કે યોગ્ય કાળે જ બળ્યવું તે. માત્ર કાળ વેળા સિવાય બધી પોરસીમાં બળ્યાય તેને ઉત્કાલિક કહ્યું છે. કાલિક તથા ઉત્કાલિક બંને શ્રુતનો લઘુ અનધ્યાય કાળ બે ધડીનો છે તેવી કાળવેવા પ્રત્યેક અહોરાત્રમાં ચાર આવે છે. તેટલો વખત અધ્યયન માટે ત્યાજ્ય છે: (૧) સધ્યાકાળ (૨) મધ્યરાત્રિ (૩) પ્રમાતકાળ (૪) મંયાન્હ આ ચાર કાળવેળા અધ્યયન માટે વર્જિત છે. પણ પડિનેહણાદિ બીજી ક્રિયા માટે નિષિદ્ધ નથી. સ્વાધ્યાય યોગ્ય કાળે કરવામાં આવે તો જ ફળીભૂત થાય છે. અનધ્યાયનો સમય ધણા પ્રકારનો છે, તેનું વિસ્તારથી સ્વરૂપ આવશ્યક નિર્ચયિતની વૃત્તિમાં પ્રતિક્રમણ અધ્યયનમાં તેમજ પ્રવચન સારોદ્ધારમાં છે. અત્રે એ સંબંધમાં કંઈક દર્શાવય છે. નીચેના કારણોથી અસ્વાધ્યાય કાળ ગણવો:—

૧. આકાશમાંથી સદ્મ રજ પડતી હોય, તેમજ ધુંચર કે ધુંવાડ જેટલો કાળ પડે તેટલો સમય. ધુંચર પડતો હોય ત્યારે તો મુનિએ અંગાદિની ચેષ્ટા પણ ન કરવી.
૨. ગંધર્વનગર એટલે આકાશમાં નગર જેવું દેખાય છે તે, ઉલ્કાપાન, દિશાઓનો ઘાહ અને વિદ્યુત્પાત થાય તે સમય ઉપરાંત એક પ્રહર સુધી.
૩. આકાળે (વર્ષાક્રમણ વિના) વિદ્યુત્તનો ચમકારો થાય વા આકાલે મેઘની ગર્જના થાય તો બે પ્રહર સુધી.
૪. અપાડ ચોમાસાનું તથા કાર્તિક ચોમાસાનું પ્રતિક્રમણ કર્યા પછી પ્રતિપદા (એકમ= પડવા) સુધીનો સમય.
૫. આસો તથા ચૈત્ર સુદી પાંચમના મધ્યાન્હ સમયથી ચારબીને કૃષ્ણપક્ષની પ્રતિપદા સુધીનો સમય. વદી બીજને દિન સ્વાધ્યાય કરવો યોગ્ય છે.
૬. રાજ અને સેનાપતિ વગેરેનું પરસ્પર યુદ્ધ થતું હોય તે સમય.
૭. હોળીના પર્વમાં બ્યાં સુધી રજ શાંત ન થાય ત્યાં સુધી.
૮. ગામનો રાજ મરણ પામે તો બ્યાંસુધી બીજા રાજનો અભિષેક ન થાય ત્યાંસુધી.

[૩૪૬]

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ

[વર્ષ ૩

૯. ઉપાશ્રયથી સાત ઘર સુધી કોઇ પ્રસિદ્ધ માણુમ મૃત્યુ પામ્યો હોય તો એક અહોરાત્રિનો અનધ્યાય કાળ.

૧૦. ઉપાશ્રયથી સો હાથ સુધીમાં કોઇ અનાથ મૃત્યુ પામ્યો હોય તો તેનું શય ન્યાં સુધી લઈ ન જાય ત્યાંસુધી અસ્વાધ્યાય કાળ.

૧૧. સ્ત્રીના રૂદ્ધનો શબ્દ જ્યાંસુધી સંભળાય ત્યાં સુધી સ્વાધ્યાય કરવો નહિ.

૧૨. જળચર, તિર્યંચ, પંચેન્દ્રિય, મત્સ્ય વગેરે (વિકલેન્દ્રિય નહિ) ના રૂધિર માસ કે હાડકોં ઉપાશ્રયથી સાઠ હાથ સુધીમાં પડ્યાં હોય, તો તે તથા કોઇ પક્ષાનું ઈંડું પડ્યું હોય, પણ ભાંગ્યું ન હોય તો તે કાઢી નાંખ્યા પછી સ્વાધ્યાય થઈ શકે. અને જો ઈંડું પુટી ગયું હોય તો ત્રણ પોરસી સુધી સ્વાધ્યાય કદપે નહિ. તેમાં પણ જો ઈંડું પુટેલું હોય અને તેમાંથી રસનું બિંદુ ભૂમિ ઉપર પડ્યું હોય તો તે સાઠ હાથની બહાર લઈ જઈને તે ભૂમિ ધોયા પછી સ્વાધ્યાય કદપે.

૧૩ માખના પગ જેટલું પણ ઈંડાના રસનું અથવા લોહીનું બિંદુ ભૂમિ પર પડ્યું હોય તો સ્વાધ્યાય કદપે નહીં.

૧૪ ગાય વગેરેને જરાયુ ન્યાંસુધી લાગેલું હોય ત્યાં સુધી અસ્વાધ્યાય કાળ અને જરાયુ પડ્યા પછી ત્રણ પેરસી સુધી અસ્વાધ્યાય.

૧૫. બિલાડી વગેરેએ બંદર વગેરે માર્યો હોય તો એક અહોરાત્રિ અસ્વાધ્યાય.

૧૬. ઉપર્યુકત રીતે મનુષ્યના સંબંધમાં સમજવું. વિરોધતા એ છે કે ઉપાશ્રયથી સો હાથ સુધીમાં મનુષ્યના અવયવો અથવા ચર્મ, માંસ, રૂધિર હાડકું વગેરે પડ્યાં હોય તો અસ્વાધ્યાય. પણ જો ઉપાશ્રય અને તે અવયવ પડેલા સ્થાનની વચ્ચે માર્ગ હોય તો સ્વાધ્યાય થઈ શકે.

૧૭. સ્ત્રીએને ઝડતુ આવે ત્યારે ત્રણ દિવસ સ્વાધ્યાય ન કદપે, પ્રદર રોગવાળા માટે અધિકકાળ સુધી.

૧૮. કોઇ ગર્ભવંતીને પુત્ર પ્રસવ થયો હોય તો સાત દિવસ સુધી અસ્વાધ્યાય, અને પુત્રી થઈ હોય તો અથવા રક્ત અધિક જતું હોય તો આઠ દિન સુધી.

૧૯. સો હાથ સુધીમાં કોઇ માળક વગેરેનો દાંત પડ્યો હોય તો તે શોધવો અને જો દાંત જોવામાં ન આવે તો 'દાંત ચોહડા વણિયં કરેમિ કાઉસગ્ગં' એમ કહી એક નવરાકારનો કાયોત્સર્ગ કરવો. પછી સ્વાધ્યાય કદપે.

૨૦ દાંત વિના ખીજ કોઇ અંગ અથવા ઉપાંગનું હાડકું સો હાથ સુધીમાં પડ્યું હોય તો આર વર્ષ x (?) સુધી વાચનાદિક સ્વાધ્યાય કદપે નહિ. મનમાં અર્થનો વિચારણાનો કોઇસ્થાને નિષેધ નથી.

૨૧. આદર્શ નક્ષત્રથી આરંભીને સ્વાતિ નક્ષત્ર સુધી, વિદ્યુત તથા મેઘ ગર્જના થાય તો સ્વાધ્યાયનો નિષેધ નથી.

xઅહીં કંઈક કાળની સ્મરના જણાય છે.

સાત પ્રકારની વૃદ્ધિ

લેખક:—આચાર્ય મહારાજ શ્રીવિજયપદ્મસૂરિજી

આયુર્વૃદ્ધિર્યશો-વૃદ્ધિ--વૃદ્ધિ: પ્રજ્ઞાસુખશ્રિયામ્ ॥

ધર્મસંતાનવૃદ્ધિશ્ચ, ધર્માત્તિ સપ્તાપિ વૃદ્ધય: ॥ ૧ ॥

આ જીવ અનાદિ કાલનો છે એટલે તેને અનાવનાર કોઈ છે જ નહિ. અને જેમ ઘટ વગેરે પદાર્થો અમુક કાલે ઉપજ્યા એમ કહેવાય છે, તેમ જીવ પણ અમુક વખતે ઉપજ્યો એમ ન કહી શકાય. આવા અનાદિ જીવને નારક નિર્ચય મનુષ્ય દેવ ગતિરૂપ સંસારમાં જે ભટકવું પડે છે તે પણ અનાદિ કાલથી છે. એટલે પહેલાં આ જીવને રખડપટ્ટી હતી નહિ અને અમુક કાલે તે શરૂ થઈ એમ નથી. આ સંસારને શાસ્ત્રકાર ભગવતે ખીલ કોઈ શબ્દથી ન ઝાળખાવતા ‘ભવ’ શબ્દથી સ્પષ્ટ ઝાળખાવ્યો છે, તેનું સ્વરૂપ એ છે કે જેમાં જીવો-દેવરૂપે, મનુષ્યરૂપે, તિર્યચરૂપે અથવા નરકરૂપે ઉપજે તે ભવ કહેવાય.

આ ભવ (સંસાર) દુઃખ સ્વરૂપ છે. એમાં આસક્તિ રાખનાર જીવોને દુઃખ સિવાય ખીલું ક્ષણ મલતું જ નથી અને જ્યાં સુધી એને છોડવાનો પ્રયત્ન ન કરે ત્યાં સુધી દુઃખની જ પરંપરા વેઠવા પડે છે. આવા સંસારના નાશનો ઉપાય એ છે કે નિયાણાનો ત્યાગ કરીને વિધિ પૂર્વક પરમ ઉલ્લાસથી નિર્મલ ધર્મની આરાધના કરવી. એમ કરાય તો સંસારનો નાશ જરૂર થઈ શકે. આ ધર્મની આરાધના કરવાથી સાત પ્રકારની વૃદ્ધિ થાય છે, તે આ પ્રમાણે:—

૧. આયુષ્યની વૃદ્ધિ—શ્રી જિનેશ્વર દેવે કહેલ પવિત્ર ધર્મની આરાધના કરવાથી લાંબુ આયુષ્ય મળે છે. જુઓ આ ચાલુ ચોવીસીમાં થયેલા, પહેલા તીર્થંકર શ્રી આદિશ્વર ભગવંતને ૮૪ લાખ પૂર્વનું આયુષ્ય મળ્યું હતું એ ધર્મનો જ પ્રતાપ હતો. આ લાંબા આયુષ્યની સાથે સાથે નીરોગી જીવન હોય તો જ તે લાંબુ આયુષ્ય મળ્યું વ્યાજબી ગણાય. પ્રભુ ઋષભદેવને ધર્મારાધનથી મળેલા, એટલા લાંબા આઉખામાં પ્રગલ પુણ્યના પ્રતાપે જરા જેટલી પણ ખીજા ભોગવવી પડી ન હતી. વળી સામાન્ય નિયમ પ્રમાણે તપના પારણે હલકો પદાર્થ પચી શકે છતાં શ્રી ઋષભદેવે સાંવત્સરિક જેવા લાંબા તપના પારણાના પ્રસંગે ધક્કુરસને પચાવ્યો. એ પણ ધર્મારાધનથી પેદા કરેલા પુણ્યના પ્રભાવથી જ થઈ શકે.

૨. યશની વૃદ્ધિ—દશરથ રાજાના વિનીત પુત્ર શ્રીરામચંદ્રજી કે જે ન્યાયનિષ્ઠ હતા તેમણે પિતાની આજ્ઞાને શિરસાવંધ ગણીને વનવાસ પણ પસંદ કર્યો હતો. તેમને થઈ ગયે અત્યાર સુધીમાં ૧૧ લાખ વષે થઈ ગયાં તેમણે જે રીતે ન્યાયધર્મથી રાજ્યનું પાલન કર્યું, અને પ્રજાનો પ્રેમ પણ મેળવ્યો, એથી તેમનો ફેલાયેલી કીર્તિ હતું સુધી પણ જાણે નવી જ હોય તેવી લોકોમાં ગવાય છે. આ પણ ધર્મનો જ પ્રભાવ સમજવો!

૩. યુદ્ધિની વૃદ્ધિ—જે દ્વારા પદાર્થ તત્વનો ખરો મુદ્દો જણાય તે યુદ્ધિ કહેવાય. આવી વિશલ નિર્મલ યુદ્ધિ ધર્મારાધનથી મળી શકે છે. ભલે ને મોટા રાગ હોય, તો પણ જો તેન માં વિદ્યા-યુદ્ધિની ખામી હોય તો તે હાંસી પાત્ર બને છે. આ ખામત જુઓ એક દૃષ્ટાંતઃ પ્રતિષ્ઠાનપુર નગરમાં શાલિવાહન રાગ રાજ્ય કરતો હતો તેને ચદ્રલેખા વગેરે પાંચ સો રાણીઓ હતી. તમામ રાણીઓ સંસ્કૃતાદિ છએ ભાષાની જાણકાર હતી, પણ રાગ વ્યાકરણ ભણ્યો ન હતો. ભાષા યુદ્ધિને માટે અને પદાર્થનું યથાર્થ સ્વરૂપ સમજવાને માટે વ્યાકરણ ભણવાની ખાસ આવશ્યકતા છે. એક વખત ગ્રીષ્મઋતુમાં રાગએ રાણીઓની સાથે જલક્રીડા શરૂ કરી. ચંદ્રલેખા રાણી, શરીર કોમળ હોવાથી, ઠંડી સહન કરી શકતી ન હતી. અને રાગ તો પહેલાંની માફક પાણી છાંટ્યા જ કરતો હતો. આ ખામતનો નિષેધ કરવા રાણીએ સંસ્કૃત ભાષામાં રાગને કહ્યું કે—“દેવ, માં મોદકૈઃ સિંચય” (આનો અર્થ આ છે કે હું રાગને, મને પાણી છાંટો નહિ. ‘મા-ઉદકૈઃ = નહિ-ઉદક વડે. અહીં વ્યાકરણના નિયમ પ્રમાણે આનક નો ‘ઓ’ થાય) એમ વારંવાર રાણીએ કહ્યું તોપણ વ્યાકરણનો ઓષ ન હોવાથી રાગ શાલિવાહન રાણીનો કહેવાનો મુદ્દો સમજી શક્યો નહીં. એ તો ‘મોદક’ આવો શબ્દ સાંભળીને ઉદ્દુ એમ સમજ્યો કે રાણી લાડવા માગે છે. જેથી દાસીને લાડવાની છામડી લાવવા ફરમાવ્યું. દાસી તે લાવી. આ ખનાવ જોઇને રાણી હસી પડી. અને વિચારવા લાગી કે ‘રાગ આવી ખીના પણ સમજ્યો નથી. હસતી એવી રાણીને જોઇને રાગએ હસવાનું કારણ પૂછ્યું, ત્યારે રાણીએ કહ્યું કે—હું કહું છું કંઈ ને તમે સમજો છો કંઈ, તેથી મને હસવું આવ્યું. રાણીના આ વચન સાંભળીને રાગ શરમાઇ ગયો. પછી તેણે વિદ્યા (યુદ્ધિ) મેળવવા માટે ત્રણ ઉપવાસ કરીને સરસ્વતી દેવીની આરાધના કરી. દેવીએ પ્રત્યક્ષ દર્શન દઇને બરદાન દીધું. જેથી રાગ કાવ્યરચનામાં કુશળ કવિ થયો. અને તેણે સારસ્વત નામનું વ્યાકરણ પણ આપ્યું.

ધર્મના પસાયે પ્રજા (વિદ્યા) નો વધારો થઇ શકે છે. આ ત્રીજી વૃદ્ધિ જણાવી.

૪. સુખની વૃદ્ધિ—કહ્યું છે કે-વધારે પ્રમાણમાં ધર્મારાધન કરવાથી મન ગમતાં ભોજન, સુખ સાહિષ્ણી. દાન દેવાનું સામર્થ્ય વગેરે મળે છે. યાદ રાખવું કે સુખનું ખરું સાધન ધર્મારાધન છે. જેમ જેમ પુદ્ગલરમણતા ઓછી થાય તેમ તેમ ધર્મક્રિયા તરફ લક્ષ્ય જરૂર રહે છે. મોહ રાગના પંડામાં સપડાયેલા જીવો પોતાની ફરજ સાધવામાં જરૂર મુંઝાય છે.

ધર્મસ્ય ફલમિચ્છન્તિ, ધર્મ નેચ્છન્તિ માનવાઃ ॥

ફલ નેચ્છન્તિ પાપસ્ય, પાપ કુર્વન્તિ સાધરાઃ ॥ ૧ ॥

૧-ત્રણ ઉપવાસ એ અક્રમ કહેવાય, આ તપનો પ્રભાવ એવો અલૌકિક છે કે જેથી કઠિન એવાં કાર્યો પણ રહેલ બને છે. જ ખંડ સાધતી વખતે ચક્રવર્તીઓ પણ જુદા જુદા સ્થલે ૧૩ અક્રમ કરે છે.

૨-આપભદ્રિસૂરિ-હેમચંદ્રસૂરિ વગેરે મહાપુરુષોએ પણ સરસ્વતીની આરાધના કરી છે.

૫ લક્ષ્મીની વૃદ્ધિ—ધર્મના પ્રતાપે લક્ષ્મીની પણ વૃદ્ધિ થાય છે. આ બાબતને સ્પષ્ટ સમજવા માટે પેથડની બીના ઉપયોગી થઇ પડશે તે આ પ્રમાણે જાણવી:—

વિદ્યાપુર નગરના રહીશ પેથડ (મંત્રી) પહેલાં જ્યારે સામાન્ય સ્થિતિમાં હતા, ત્યારે પૂજ્યપાદ આચાર્ય મહારાજશ્રી ધર્મધોષસૂરિજીની પાસે પરિચહનો નિયમ લેવા ઉત્કંઠિત થયા. તે વખતે પેથડે શ્રી ગુરુમહારાજને કહ્યું કે—“હું પરિચહની બાબતમાં પાંચ સો દ્રમ્મનો નિયમ કરું છું. તે ઉપરાંત કમાઈ તો ધર્મભાગે વાપરું” આવી હકીકત સાંભળીને જ્ઞાની ગુરુએ તેનું ભવિષ્ય સાઈ પારખાને સમજાવીને પાંચ લાખનો નિયમ કરાવ્યો. તે પછી એક વખત દુકાલના પ્રસંગે પેથડ માલવદેશ તરફ ગયો ત્યારે માંડવદુર્ગ (માંડવગઢ) ની ઉપર ચઢતાં દરવાજાની ડાબી બાજુએ, સર્પના માથા ઉપર ચકલી બેઠેલી જોઈને આગળ જતાં પેથડ અટકી ગયો. આ બનાવ એક જોશીએ જોઈને પેથડને કહ્યું કે—“ખર ડાબા વિપહર જમણા” આ કહેવત પ્રમાણે તમને ઉત્તમ શકન મળ્યા તોએ તમે આગળ કેમ ન ચાલ્યા? જે તમે શકનના વખતે આગળ ચાલ્યા હોત તો તો વિશેષ લાભ ચાત. હજુ પણ આગળ ચલશો તો ભવિષ્યમાં તમે મંત્રી થશો. જોશીનાં આવાં વેણુ સાંભળીને પેથડ આગળ ચાલ્યા. ઉત્તમ શકનનું ફલ એ મળ્યું કે—પૂર્વાવધારમાં જે પોતે લુણુ વેચતા હતા તે થોડા વખતમાં સારંગદેવ નામના રાજાના મંત્રી થયા. પેથડને પ્રથમાદે (ત્રી) નામની ગુણવંતી સ્ત્રી હતી, અને ઝંઝુદે (વ) નામનો પુત્ર હતો. આ પુત્રના લગ્ન પ્રસંગે સૈન્યાદિ પરિવારથી પરવરેલા સારંગદેવ રાજાને નર્મદા નદીના કાંઠે ઉત્તમ ભોજન જમાડી પેથડે તેમનો સારો સત્કાર કર્યો. લગ્ન બાદ રાજાએ પેથડની પુત્રવધુને કંચુવિકા દાનમાં (કાપડામાં) દર વર્ષે માટે પોતાના એક લાખ દર હજાર ગામથી શેષાપમાન માત્રવ દેશના દરેક ગામ દીઠ એક ગદીયાણા પ્રમાણુ સોનાનું દાન કર્યું. આ નિમિત્તે પેથડને દર વર્ષે ૯૪૬ મણુ સોનાની આવક થતી હતી. મત્રિ પેથડ તે તમામ મીલકત ધર્મકામમાં વાપરતા હતા. તેમણે કોઠા કે.ટિ મહાપ્રાસાદ વગેરે ૮૪ આવન જિનાલય દહેરાસરે બંધાવ્યા. તેમજ ભરચ વગેરેમાં ૭ જ્ઞાન ભંડાર કરાવ્યા હતા. તથા અનંત તીર્થકર ગણુધરાદિ મહાપુરુષ સમલકૃત તીર્થોધિરાજશ્રી શત્રુજ્ય ગિરિરાજની ઉપર ૨૧ ધડી પ્રમાણુ સોનું વાપરીને મુખ્ય પ્રાસાદને સોનાની ખોલીથી સુશોભિત બનાવ્યો હતો. તેમજ અઢારમાર સોનું ખરચીને તે પ્રાસાદના શિખર ઉપર સોનાના દંડ કલશ ચઢાવ્યા હતા. એ પ્રમાણુ તેમણે માંડવગઢના ત્રણુ સો જિનપ્રાસાદોની ઉપર દંડ કલશ ચઢાવી સ્વલક્ષ્મીને સદુપયોગ કર્યો હતો.

પોતાને પરિચહનો નિર્મલ નિયમ કરાવનારા પરમોપકારિ શ્રી. ધર્મધોષસૂરિમહારાજ સપરિવાર આમાનુગ્રામ વિચરતા જ્યારે પોતાના ગામમાં પધાર્યા ત્યારે પેથડે પ્રવેશમહોત્સવમાં (સામૈયામાં) ૭૨ હજાર ટાંક વાપર્યા હતા. શ્રી. ગિરિનાર મહાતીર્થમાં જ્યારે એક સાથે શ્વેનાંખર અને દિગંખરને ઝગડો ઉભો થયો, ત્યારે ગઢયા સમજુ માણુસોએ એક પતામણુનો રસ્તો કાઢી આપ્યો કે—“બંને (શ્વે. દિ.) મંઘવિમાંથી જે ઈંદ્રમાલ પહેરશે તેનું આ તીર્થ ગણુશે.

આવો નિર્ણય સાંભળીને મહાકૃત્સાહી મંત્રિ પેથડે ઉગ્રમણુમાં ૫૬ ધડી સો ખોલીને

[જુઓ પાનું ૩૫૩]

कोचर व्यवहारीका समय-निर्णय

लेखक-श्रीयुत अगरचंदजी भंवरलालजी नाहटा

श्री विजयधर्मसूरिजी सम्पादिक ऐतिहासिक रास संग्रह (सं. १९७६ प्रकाशित) भाग १ में सर्व प्रथम तथागच्छोय कवि गुणविजयरचित कोचर व्यवहारी रास प्रकाशित हुआ है जिसे कविने सं. १६८७ आसोज सुदि ९ को डीसा नगरमें रचा था यद्यपि कविने कोचर व्यवहारी किस संवत् में हुए इसका कोई स्पष्ट काल निर्देश नहीं किया है फिर भी रास में उल्लिखित कोचर व्यवहारी से सम्बन्ध रखनेवाले सुमतिसाधुसूरि और देपाल का उल्लेख होने से कोचर व्यवहारीका समय, उल्लिखित दो व्यक्तियों के समयानुसार सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध ठहरता है। रास सार में आचार्य श्री विजयधर्मसूरिजीने भी उनके उस समय में होने में कोई आपत्ति नहीं दर्शाई, प्रत्युत बटनाको पुष्टि अन्य प्रमाणों द्वारा कुटनोट में की गई है, परन्तु जबसे हमने खरतर गच्छको प्राचीन पट्टावली+ जोकि सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की लिखी हुई है, जिनादयसूरि (१४१५-३२ के सम्बन्ध में “वर्तितद्वादशग्रामामारिवोपणेन सुरत्राणसनाखत सा. कोचरश्रावकेण सलखणपुरे कारितप्रवेशोत्सवानां” लिखा देखा तभी से कोचरसाह के १६वीं शताब्दी में होने के विषयमें सन्देह हो गया। सूरिजी के उपर्युक्त ग्रंथ (रास और राससार) एवं अन्य प्रमाणों पर विशेष विचार करने पर हमें हमारी शंका एक नवीन ऐतिहासिक सत्य की ओर ले जाती हुई ज्ञात हुई, जिसके विषय में यहां विशेष विचारणा की जाती है।

१ सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखित खरतर गच्छ पट्टावली में कोचर साह के जो विशेषण लगाए हैं वे कोचर व्यवहारिया रास के विषय से बिलकुल मिलते हुए हैं यथा:—१ बारह गावों में अमारि घोषणा, २ सुरत्राण सनाखत, ३ सलखणपुरमें। अतः रासनायक और पट्टावली में उल्लिखित कोचर साह के एक होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता। ऐसी अवस्था में कोचर साह का समय सोलहवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध न होकर तत्कालीन लिखित पट्टावली के कथनानुसार श्री जिनादयसूरिजी के समकालिन-१५ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में होना विशेष प्रमाणित होता है। रास की रचना पट्टावली से १५० वर्ष पश्चात् हुई है अतः उसका लेखन निश्चित रूपसे स्वलनारहित नहीं कहा जा सकता।

२ राससार के पृ० ३ में रास में उल्लिखित कोचरसाह के सहयोगी साजणसो को शत्रुंजयोद्धारक सुप्रसिद्ध समरासाहका पुत्र सज्जनसिंह

+ महा० जयसागर शि. मडो. सोमकुंभर शि. देवनन्दन महिमारत्न लिखित।

बतलाया गया है* इससे भी कोचरसाहका सोलहवीं शताब्दी में होना संभव नहीं क्योंकि समरासाहने सं. १३७१ में शत्रुञ्जयका उद्धार कराया। उसके पुत्रका सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान रहना असंभव है। खरतर गच्छ पट्टावलीके अनुसार १५वीं शताब्दी का पूर्वार्ध ही उसका समय विशेष संगत है ! जोकि निम्नोक्त विचारणा से विशेष प्रमाणित हो जाता है।

शत्रुञ्जय पर सं. १४१४ का एक लेख विद्यमान है, वह समरासाह और उसकी धर्मपत्नीकी मूर्ति पर है जिसे उपर्युक्त सज्जनसिंह और उसके भाई सालिगने बनवाया था, लेख इस प्रकार है :—

“संवत् १४१४ वर्षे वैशाख सुदि १० दिने गुरौ संवपतिदेशलसुतसा० समरा समरथी युग्मे सा० सालिग सा० सज्जनसिंहाभ्यां कारितं प्रतिष्ठितं श्री कक्कसूरिशिष्यैः श्री देवगुप्तसूरिभिः ॥ शुभं भवतु ”

—(जैन ऐतिहासिक गूर्जर काव्य संचय राससार पृ. १६६) ॥

इतना ही क्यों ? सज्जनसिंह की मृत्यु भी अन्य एक लेखसे सं. १४६ से पूर्व प्रमाणित होती है वह लेख इस प्रकार है :—

“संवत् १४६८ वर्षे आषाढसुदि ३ रवौ उपकेशज्ञातौ वेसटावन्ये चिचट गोत्रे सा. श्री देसल सुत साधु श्री समरसिंह नन्दन सा श्री सज्जनसिंह सुत सा श्री सगरेण पितृमातृश्रेयसे श्री आदिनाथ चतुर्विंशति जिनपट्टकः कारितः श्री उपकेश गच्छे ककुदाचार्यसंताने प्रतिष्ठितं श्री देवगुप्तसूरिभिः ।

—(जैन धातुप्रतिमा लेखसंग्रह भाग. २, ले. ५६०)

३ रासकारने कवि देपाल को देसलहरा समरा सारंग के घरका याचक भी लिखा है, इससे हमारा कथन मान लेने पर कवि देपाल का सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्धमें होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि समरा साह का समय १३७१ से १४१४ निश्चित है, पर इसके विषय में विचार करने पर ज्ञात हुआ कि वह रासकारकी भूल है और वह भूल संभवतः किम्बदन्तीयां और देपालकृत समरा सारंग के कडखे के कारण हुई होगी। श्रीयुक्त मोहनलाल

* पृ. ८ में 'समरनो पुत्र सज्जनसिंह ए ज रासमां वर्णवेल साजणसिंह छे।' सूरिजीने संवत् १२१६ लिखित स्वर्ण कल्पसूत्रकी प्रशस्तिसे साजनसो के वंशानुक्रम के ९ श्लोक और वंशवृक्ष देकर अच्छा प्रकाश डाला है, पर प्रशस्ति पुरी देकर यदि विचार किया जाता तो हमारे खयालसे यह भूल नहीं होती। यह प्रशस्ति अपूर्ण देने से दूसरे किसीको भी अद्यावधि इस खलना के सम्बन्ध में विचार करनेका अवसर मिला ज्ञात नहीं होवा। और हम भी सज्जनसिंहकी कौनसी पोढ़ीमें शिवशंकर हुए जिनकी पत्नी देवलदेने प्रस्तुत कल्पसूत्र वा. वित्तसार को बहराया, कह नहीं सकते।

दलीचंद देसाई महोदयने जैनयुग, वर्ष ५. अं. ९-१० वैशाख, ज्येष्ठ के अंक में उपर्युक्त “कवि देपालकृत समरासाह का कडखा’ प्रकाशित किया है। देसाई महोदयने उस पर एक नोट लगा कर उपर्युक्त आपत्तिका निवारण कर दिया है, जो यह है:—

“कवि देपाले मांगरोलना सरोवरनी पाले चारणो पासे जे जूना कडखो कवित्त सांभलया ते अहीं नौधेल छे. ते कवित्त करनारा एकनुं नाम शंकर दास छे × × + समरा अने सारंग बन्ने भाईयो हता, मोटो संघ लइ संवत् १३७१मां सिद्धगिरि तथा गिरनारनी यात्रा करी हती. आ कवि देपाल सोलमा सैकानी शरूआतमां थपल छे × × समरा सारंग देसलहरा हता अने तेमना वंशजो देसलहरा कहेवाता हता. ते वंशजोनो आश्रित ते हतो, नहीं के समरा सारंगनो. कारण के समरा सारंग सं. १३७१मां थया ज्यारे देपाल सं. १५०१ थी १५३४ सुधीमां हयात हतो, बन्ने वच्चे लगभग सो ऊपर वर्षोनुं अंतर छे ” इससे उपर्युक्त आपत्तिका सर्वथा निरसन हो जाता है।

४ अब एक चौथा प्रश्न और भी विचारणीय रह जाता है वह यह है कि रासकारने कोचर साह जब व्यापारार्थ खंभात आया तब वहां तपगच्छ नायकसे व्याख्यान श्रवण करने का लिखा है। सुमतिसाधुसूरिका इसी ऐतिहासिक राससंग्रह भाग १ पृ-२९ (राससार) में जन्म १४९४, दीक्षा १५११, गच्छनायकपद १५१८ और स्वर्ग सं. १५५१ लिखा है अतः सुमति-साधुसूरि के समयमें यदि कोचर साह हुए हों जैसाकि रासकारने बतलाया है तो उनका समय भी सं. १५१८ से १५५१ होना चाहिए परन्तु आगे बताए हुए प्राचीन विश्वसनीय प्रमाणोंके सामने रासकारकी यह बात खलनायक ज्ञात होती है।

कोचरसाह और साजणसी के समय खंभात का अधिपति कौन था? कोचरसाहको १२ गांव का अधिकारी किसने बनाया? इसके विषय में रासकार एवं पट्टावलीकार दोनोंने ही कोई नाम-निर्देश नहीं किया। अतएव उस सम्बन्ध में ऊहापोह करने का यहां अवकाश नहीं है।

५ खरतरगच्छ की पट्टावली से कोचर साह के समय का ही प्रकाश नहीं पडता परन्तु साथ साथ उसके सलखणपुर आदि १२ गांवों में अमारि उद्घोषण कराने की घटना भी विशेष परिपुष्ट होती है। कोचरसाह को रासकारने प्राग्वाट ज्ञातीय लिखा है। प्रमाणाभाव से यह नहीं कह सकते कि यह कहां तक ठीक है फिर भी रासकार ने उसे तपागच्छीय श्रावक लिखा है यह अवश्य विचारणीय है। खरतर गच्छकी पट्टावली से कोचर साह के खरतर गच्छाचार्यों के प्रति बहुमान-भक्ति, स्पष्ट ज्ञात होती है। तभी तो सलखणपुरमें श्री जिनोदयसूरिजीके पधारने पर कोचरसाहने समारोह पूर्वक प्रवेशोत्सव कराया था। उस समयकी परिस्थिति देखते अपने अपने गच्छका राग उस समय भी विशेष रूपसे ही ज्ञात होता है।

सतरहवीं शताब्दी की लिखित हमारे संग्रहस्थ एक पट्टावली से यह भी ज्ञात होता है कि कोचर साहने समरासाह या उनके वंशजोंकी प्रतिस्पर्द्धा से श्री जिनोदयसूरिजीको शत्रुंजय यात्रा भी करवाई थी। सुमतिसाधुसूरि के नाम देनेकी भूल के अनुसार संभवतः रासकारने कोचरसाहको तपा गच्छीय बतलानेमें भी भूल की हो। खरतर गच्छकी पट्टावलीसे एक और भी नवीन बात मिलती है कि समरासाह के भाई सारंगकी पुत्री एक प्रसिद्ध खरतर गच्छीय भक्त श्रावक (जिसने शत्रुंजय पर खरतर वसहीमें जिनकुशलसूरिजी द्वारा आदिनाथ भगवानकी प्रतिष्ठा करवाई थी और उनका पदोत्सव भी कराया था) को व्याही गई थी।

कोचरसाह के विषय में रासकारने किस आधार से लिखा यह अज्ञात है। यदि उससे प्राचीन प्रमाण-चरित्र प्राप्त हो जाय तो इस विषयमें विशेष स्पष्टीकरण हो सकता है। हमारे उपर्युक्त विवेचनसे यह प्रमाणित हो जाता है कि कोचरसाह पन्द्रहवीं शताब्दीके पूर्वार्द्ध में हुए थे।

(३४८ भा पानानुं अनुसंधान)

धर्ममात्र पहेरी अने तीर्थ पोतानुं अनायुं. छेवटे पेथडे अहयारि श्री नेमिनाथ, जंभू-स्वमि, स्थूत्रिभद्र महाराज, वज्रस्वामि आदिना पवित्र जवन यरित्र विचारीने अतीश परसनी उंभरे महाप्रभावशालि शिष्यवत अंगीकार क्युं हतुं. मत्रि पेथडने प्रतिकमणुनी आयतमां जेवो नियम हतो के जे जे गाड हटे अमुक स्थले साधु मुनिराज छे जेवी अयर मने तो त्यां जठने मुनिराजनी पसे ज देवसी आदि प्रतिकमणु करे. अने पाक्षिक प्रतिकमणु माटे जेवो नियम हतो के यार योजन हटे जठने पणु मुनिराजनी पासे ज करे. जेम मत्रि पेथडे लक्ष्मीना सदुपयोग कर्यो, तेम आ प्रसंगे मत्रि वस्तुपाल, विक्रमराज आदिनी पीना पयु लूलवा जेवी नथी. ते सौने आवी रीते लक्ष्मीनी प्राप्ति अने वृद्धि थछ ते धर्मने ज प्रताप समजवो.

६ धर्मनी वृद्धि—जेम जेक पीजमांथी धरुं पीज, जेक दीवामांथी अनेक दीवा प्रकटे, तेम श्री सिद्धयकाराधनादि धर्मक्रियाना प्रतापे पुण्य वने छे के जेथी जवांतरे उत्तम धर्म सामग्री मली शके.

७ संतानवृद्धि—अविच्छन्न प्रभावशास्त्रि त्रिशलायाधित. श्री. प्रभुदेवभाषित धर्मनी निर्मल आराधना करवाथी पुण्यशालि भव्य जेवने, जे धउपणु मांजगी आदि प्रसंगे पोततो उचित विनय जणवे जेवो, विनीत पुत्रादि परिवार सांपडे छे.

अरभतीर्थकर देवाधिदेव, श्री प्रभुमहावीर देवना शासनना रंगी भव्य जेवो जे प्रमाणे सात प्रकारनी वृद्धिनुं राख जणुने पोतानुं जवन धर्मभय जनावे अने छेवटे कर्मभयाने दूर करी स्थिर सात्त्विक आनंदमय परम पाने पावे जे ज हार्दिक भावना !

સ્વાધ્યાય

[ટુંકા ઐતિહાસિક પ્રસંગો]

સાચી ઋદ્ધિની શોધમાં

“ધના શાલીભદ્રની ઋદ્ધિ હજી !” એમ ચોપરામાં લખીને આપણે જે શાલીભદ્રની ઋદ્ધિની વાંછા કરીએ છીએ તેમની આ વાત છે.

મગધ દેશની રાજધાની રાજગૃહીના ઉત્કર્ષનો મધ્યસ્થ હતો. નગરીમાં અનેક ધનાઢ્યો અને કરોડપતિઓ રહેતા હતા. રાજ્ય શ્રેષ્ઠિક તે વખતે મગધના રાજા હતા. એક વખત એક પરદેશી વેપારી મહામૂલ્યાં રત્ન કંબળો લઈને મહારાજા પાસે આવ્યો. કંબળોનું મૂલ્ય ઘણું હોવાથી રાજાએ એ ન ખરીદ્યાં. વેપારી નિરાશ થયો. જ્યાંતો રાજા જે યીજ ન ખરીદી શક્યો તેને ખરીદનાર ખીજું કાણ મળે? પણ હેવટે તે બદ્ધા શેઠાણી પાસે આવ્યો. બદ્ધા શેઠાણી તે શાલીભદ્રનાં મા શાય ! તેમણે અધ્યાય કંબળો ખરીદી લીધાં અને વધુ હેય તેા લાવવા સૂચ્યું ! અને વેપારીનાં નાણાં ચૂકવી આપવા ખગ્નનચીને આજ્ઞા આપી ! વેપારીના અચખાનો પાર ન રહ્યો !

રાણી ચેલણાની પ્રેરણાથી એક કંબળ ખરીદવાની રાજા શ્રેષ્ઠિકની ઇચ્છા થઈ; પણ વેપારીએ, અધી કંબળો બદ્ધા શેઠાણીએ ખરીદી લીધાની વાત કરી કંબળ આપવાની પોતાની અશક્તિ જણાવી ! જે એક કંબળ ખરીદનાં પણ પોને ખચકાતો હતો તે તમામ કંબળોને એકા સાથે ખરીદનાર પોતાનો જ પ્રગ્નજન કેવો સમૃદ્ધ હશે તે જોવાનું રાગ્નને મન થયું ! અને તેણે શાલીભદ્રશેઠને પોતાને મળવાનું આમંત્રણ મોકલ્યું ! ઘરનો તમામ વહીવટ બદ્ધાશેઠાણી સંભાળતા હતા. અને શાલીભદ્ર તેા માતાની મમતાળ હુકમાં કોઈ પણ જનની ઉપાધિ વગર પોતાની રાણીએ સાથે મહેલમાં આનંદ વિલામમાં બધો વખત વીતાવતા હતાં. બહારની દુનિયાનો તેમને જરાય ખ્યાલ ન હતો. એટલે શેઠાણીએ રાગ્નને પોતાના મકાને પધારવા વિનંતી કરી. રાજા શ્રેષ્ઠિકને તેા શાલીભદ્ર શેઠને જોવાનું કૃતુહલ જગ્યું હતું એટલે તેમણે એ વાત પણ ક્યુલ કરી.

—અને નકી કરેલ વખતે તેએ શાલીભદ્ર શેઠના મકાને પધાર્યાં. શાલીભદ્ર શેઠ તેા ત્યારે પણ પોતાના આનંદમાં મગ્ન હતા. માતાએ રાજા શ્રેષ્ઠિક પધાર્યાની વાત કરી એટલે શાલીભદ્રે તેમની એળખ પૂછી. માતાએ કહ્યું : “ભાઈ, શ્રેષ્ઠિક કોઈ સાધારણ માણસ નથી. તે તેા આ નગરનો અને આખા મગધ દેશનો રાજવી છે. તું, હું અને ખીજા બધા મગધવાસીએ એના પ્રગ્નજન છીએ; એ આપણા બધાનો માલિક ગણાય !”

શાલીભદ્ર માટે આ વાત સાવ નવી હતી. પોતાના માથે પણ કોઈ ઉપરી છે એ વાતની એને કલ્પના સુદ્ધાં ન હતી ! માતાજીના મુખથી આવી વાત સાંભળી તેના મનમાં જાશ આંદોલ શરૂ થયું, ઝંઝાવાતથી સમય વાતાવરણ અળભળી ઉઠે તેમ. પોતે પરાધીન છે એ વાત સ્વીકારવા તે તૈયાર ન હતો, પણ એક નર્ચા સસનો અરવીકાર પણ શી રીતે થઈ શકે ? આ ખીના તેના માટે અસલ્ય થઈ પડી !

—અને તેણે આવી પરાધીન સ્થિતિને અંત આણવાનો ઉપાય યોજ્યો; પરમાત્મા મહાવીર દેવના ચરણે જઈને તેણે પંચ મહાવ્રત અંગીકાર કય. અને જે ઋદ્ધિમાં કોઈની

પણ તાપેદારી કરવાની ન હોય તેથી આત્મિક ઋદ્ધિની શોધમાં તેણે પોતાના એક વખતના વિદ્વાસપ્રેમી દેહને ઝંડી દીધો ! આત્માએ પુદ્ગલ ઉપર વિજય મેળવ્યો !

શાસ્ત્રીભદ્રની પાર્થિવ ઋદ્ધિ ઈચ્છનાર આપણે તેની સાચી ઋદ્ધિને ચાહતા ક્યારે થઈશું ?

મહાપુરુષનો મહા-સ્વીકાર

૧૪૪૪ અંથો રચ્યાની જેમની ખ્યાતી છે તે મહાધૂરંધર આચાર્યશ્રી હરિભદ્રસૂરિજી જન્મે આલિણુ હતા, તેઓ ચિત્રકૂટમાં રહેતા હતા. તેઓ ધર્મે રાજપુરોહિત હતા અને તેમના પડિલ્લેનો કંઈ પાર ન હતો ! ચાર વેદ, તમામ ઉપાનિષદ અને અદારે પુરાણના તે પારંગત હતા. આદ્યજુ ધર્મ-શાસ્ત્રાનું કોઈ પણ અંગ એમનાથી અગ્ન્યુત્તુ ન હતું. વાદ કરવામાં કોઈ તેમની તોળે ન આવતું; સૌ કોઈ એમની અપાર શક્તિનો સ્વીકાર કરતું. અનેક વિદ્યાર્થીઓની તેમની પાસે અધ્યયન કરતા અને તે વખતના વિદ્વાનોમાં તેમનું પ્રથમ સ્થાન ગણાતું.

જૈનધર્મનો પણ આ ઉત્કર્ષભર્યો સગવડ હતો. ઠેરઠેર તેના ધર્મપ્રચારકો પોતાનો ઉપદેશ આપતા હતા. આ વખતે કોઈ અકળ સંયોગે હરિભદ્રને યાકિની નામક એક જૈન મહત્તરા-ગુરૂણી સાથે પ્રસંગ પડ્યો. એક ગાથાનો અર્થ પોતે જ રીતે સમજતા હતા તેનાથી ગુદી અને સાચી રીતે યાકિની મહત્તરાએ તેમને તે ગાથાનો અર્થ કરી બતાવી સાચા ધર્મનો મર્મ સમજાવ્યો.

હરિભદ્ર સાચા વિદ્વાન હતા. વિદ્વાતાના મિથ્યા અભિમાને તેમના અંતઃકરણને અવરી નહોતું લીધું. તેમને પોતાની જૂઠ અને સાચી વસ્તુ સમજતાં વાર ન લાગી ! યાકિની મહત્તરાએ ઉપદેશીય બોધ તેમના હૃદયમાં તરત ઉતરી ગયો. તેમણે જૈનધર્મનો સ્વકાર કરી પંચ મહાવ્રત અંગીકાર કર્યા અને આત્મમાર્ગનું શોધન કરવા લાગ્યા.

પોતાને લાધેલા આત્મદર્શનના માગનું માટું શ્રેય યાકિની મહત્તરાનું હતું તે વાત તે ગાણના હતા. અને તેથી એ ઋણુનો સ્વીકાર કરવા માટે તેમણે પોતાની જાતને યાકિનીમહત્તરાધર્મસ્ત્રુતુ : (યાકિની મહત્તરાના ધર્મપુત્ર) તરીકે ઓળખાવી !

આજે પણ જ્યાં જ્યાં હરિભદ્રસૂરિજીનું નામ મળે છે ત્યાં ત્યાં ખીજાં વિશેષણો હોય કે ન હોય પણ ઉપરનું વિશેષણુ તો માટે ભાગે અવશ્ય મળે છે.

ન હિ કૃતમુપકારં સાધવો વિસ્મરન્તિ ।

મહાકવિની અજબ શક્તિ

પ્રારમા સૈકાનો આ વાત છે ! તે વખતે ગુજરાતમાં મહારાજ સિદ્ધરાજનું રાજ્ય તપતું હતું. નવા નવા દેશોના વિજયથી ગુજરાતના સમૃદ્ધિ દિન પ્રતિદિન વધતી જતી હતી. સાથે સાથે ગુજરાતનાં કળા કૌશલ્ય માટે પણ આ ચઢતીનો કાળ હતો.

મહારાજ સિદ્ધરાજ જયસિંહ જેવા યુદ્ધવીર અને શૂરા હતા. તેવા કળાપ્રેમી પણ હતા. કળાકારોને અને વિદ્વાનોને તેમની રાજસભામાં સારું ઉત્તેજન મળતું. આવા વિદ્વાનોને સન્માનના અને ઉત્તેજવા માટે તેમણે એક વિદ્વત્સભા કાયમ કરી હતી.

શ્રીપાળ નામનો એક કવિ આ વખતે તેમના દરબારમાં હતો. તે જાતે પોરવાડ વૈશ્ય હતો. કોઈક કારણસર તેનાં નેત્રો રાસ્યા ગયાં હતાં એટલે તે પ્રગ્ગાઠ્ઠુ બની ગયો હતા. પોતે કવિ હોવા ઉપરાંત તે મહારાજ સિદ્ધરાજનો આજમિત્ર હતો, (ઇતિહાસ ગ્રંથોમાં તેનો “ સિદ્ધરાજના આલપ્પા ” તરીકે ઉલ્લેખ મળે છે.) અને વિદ્વત્સભાનો તે મોવડી હતા.

[૩૫૬]

શ્રી જૈન સાત્ય પ્રકાશ

[વર્ષ ૩]

વિક્રાંતોને કે કવિત્વનો કોઈ કપરો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થતાં મહારાજ તેની સામે જોતા. એક વખત એવો જ કંઈક પ્રસંગ ઉપસ્થિત થયો, અને જ્યારે કોઈએ હામ ન ભીડી અને પોતાનું મોત્તીદાં લાંછિત થવાનો વખત લાગ્યો ત્યારે શ્રીપાળે અજબ શક્તિનું પ્રદર્શન કરીને પોતાની કીર્તિ ઉપર કળશ ચઢાવ્યો હતો.

આ કાર્ય એ હતું કે તેણે એક જ દિવસ જોટલા સાવ ટુંકા સમયમાં “વૈરાગ્ય નરાજ્ય” નામક એક મહાપ્રબંધની રચના કરી હતી.

શ્રીપાળની આવી અજબ શક્તિથી સૌ કોઈ આશ્ચર્યચકિત થયું. મહારાજને તેના ઉપર વિશેષ અનુરાગ થયો ! તે કવિચક્રવર્તી કહેવાવા લાગ્યો !



મહારાજની ધર્મ અને ન્યાયપ્રિયતા

ભગવાન યુદ્ધદેવને, રોગિષ્ઠ માણસ અને માણસાના શબને જોઈને વૈરાગ્ય થયાની વાત જાણીતી છે. આવો જ પ્રસંગ મહારાજ કુમારપાળના જીવનમાં મળે છે. (ફરક એટલો છે કે ભગવાન યુદ્ધ સંસાર ત્યાગી વૈરાગી થયા હતા, જ્યારે મહારાજ કુમારપાળે પ્રજાજીવન ઉપર તેની અસર ઉપજાવી હતી.)

વાત એમ બની કે એક વખત મહારાજ કુમારપાળ શહેરમાં ફરવા નીકળેલા. રસ્તામાં એક માણસ લાકડીના જોરે સાવ નખખાં થઈ ગયેલાં પાંચ-સાત બકરાંને પરાણે પરાણે હાંકતો લઈ જતો હતો. આ વખતે મહારાજ ઉપર જૈનધર્મના ઉત્તમ સિદ્ધાંતોની અસર થઈ ગઈ હતી. તેઓ આ સાવ નિરપરાધી જીવોની આવી અવહેજના ન જોઈ શક્યા ! તેમણે તે માણસને તેમ કરવાનું કારણ પૂછતાં તેણે જણાવ્યું કે “મારી આજીવિકા નિભાવવા માટે હું આ બકરાંને કસાઈને વેચવા લઈ જઈ છું, હવે આ બકરાં એવાં નખખાં થઈ ગયાં છે કે એનો ખીજો કોઈ ઉપયોગ નથી ! મારા માટે એ બારભૂત છે.”

પોતાના રાજ્યમાં મૂંગાં પ્રાણી આવી રીતે પીડાય એ તેમના માટે અસહ્ય હતું. તેમણે તરત જ હુકમ બહાર પાડ્યો કે “જે જુદી પ્રતિજ્ઞા કરે તેને શિક્ષા થશે, જે પરસ્ત્રી લાંબે હશે તેને વિશેષ શિક્ષા થશે અને જે જીવહિંસા કરશે તેને સર્વથી વધુ કઠોર દંડ મળશે.”

મહારાજની આ આજ્ઞાએ મૂંગાં પ્રાણીઓ ઉપર અસીમ ઉપકાર કર્યો !

ખીજા એક પ્રસંગે જ્યારે મહારાજ ફરવા નિકળ્યા હતા ત્યારે તેમણે એક સ્ત્રીને ચોધારઆંસુએ રડતી જોઈ. અખળા ગણાતી સ્ત્રીને આવી રીતે રોતી જોઈને મહારાજનું હૃદય પીગળવા લાગ્યું. તેમણે તે સ્ત્રીને રડવાનું કારણ પૂછાવતાં જવાબ મળ્યો કે “મારો પતિ બિનવારસ ગુજરી ગયો છે એટલે રાજ્યના નિયમ પ્રમાણે મારું-મારા પતિનું તમામ ધન રાજ્યના ખજાનામાં લઈ જવામાં આવનાર છે. એટલે મારા નિર્વાહનું કશું સાધન નહીં રહે, એથી હું દુઃખી થઈ છું.”

મહારાજએ જોયું કે રાજ્યનો આવો નિયમ સ્ત્રી જાતિ ઉપર અન્યાય સમાન હતો. તેમનું ન્યાયપ્રિય હૃદય અખળા જાતિ ઉપરના આવા અન્યાયને કેમ સાંખી શકે ? તેમણે તરત જ રાજઆજ્ઞા બહાર પાડી કે “હવેથી અપુત્રિયાનું ધન રાજ્યે નહીં લઈ લેતાં તેની સ્ત્રીને માટે રહેવા દેવું.”

સાત સૈકા પહેલાંની સ્ત્રીસન્માતની આ ભાવના ખરેખર, અભિનંદન માગી લ્યે છે !

સ મા યા ર

પ્રતિષ્ઠા—(૧) કૃંગળી (મારવડ)માં કાગણુ સુત્રી ૧૦ ના દિવસે શ્રીકૃપમજિન પ્રાસાદની પ્રતિષ્ઠા કરવામાં આવી. આ વખતે પૂ. પં. હિંમતવિજયજી આદિ ત્યાં પધાર્યા હતા. (૨) અમદાવાદ દોસીવાડાની પેળમાં ત્રિશરણના દેરાસરની પ્રતિષ્ઠા કાગણુ સુત્રી ૧૦ કરવામાં આવી. આ વખતે પૂ. આ. મ શ્રી વિજયભક્તિસૂરીશ્વરજી આદિ હાજર હતા.

દીક્ષા—ચાણુરમાં પૂ. આ. શ્રી. વિજયભક્તિસૂરીશ્વરજીએ ખોડવાળા શા. સે.મચંદ મનસુખ-રામને કાગણુ વંદી ૧૦ દીક્ષા આપી દીક્ષિતનું નામ સુમદ્રવિજયજી રાખ્યું.

કાળધર્મ—(૧) ધ્રાંગધ્રામાં તા. ૩૧-૩-૩૮ ના દિવસે પૂ. સુ. શ્રી. મોહનવિજયજી કાળધર્મ પામ્યા. (૨) અમદાવાદમાં કાગણુ વંદી ૧૩ ના દિવસે પૂ. પં. પુષ્પવિજયજીના શિષ્ય પૂ. સુ. શ્રી. પ્રકાશવિજયજી કાળધર્મ પામ્યા. (૩) પુનામાં તા. ૨-૩-૩૮ ના રોજ પૂ. આ. મ. શ્રી. વિજયરામચંદ્રસૂરિજીના શિષ્ય પૂ. સુ. શ્રી. વલ્લભવિજયજી કાળધર્મ પામ્યા.

સન્માન—જમણાદેમે જમનગરના સંઘપતિઓને ૩ એક હજારનો ચાંદણો કર્યો અને કિંમતી ચોષાક આપી તેમનું રાજ્ય તરફથી સન્માન કર્યું.

મહાવીરજયંતીની રજા—મહાવીરજયંતીના દિવસને બહાર તહેવાર તરીકે ગણવા માટે જૈનોના ત્રણે ફીરકાના જૈન ગૃહસ્થેનું એક ઉપયુક્ત મુંબઈના વડા પ્રધાન ના. ખેરને મળ્યું હતું. ના. વડા પ્રધાને આ મટે આવતા વર્ષે યોગ્ય કરવાની ખાત્રી આપી છે.

રેડિયોમાં બાપજી—ગઈ ચંત્ર સુત્રી ૧૩ ની રાત્રે મહાવીર જયંતી અંગે દિગંબરો તરફથી મુંબઈ, કલકત્તા અને દીલ્હીથી રેડિયોમાં બાપજીો ગોઠવામાં આવ્યાં હતાં.

કોન્કરન્સનું અધિવેશન—અખિલ ભારતવર્ષીય જૈન શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક કોન્કરન્સનું આવતું અધિવેશન ભાવનગર મુકામે ભરપાના ભાવનગરના નિમંત્રણનો સ્વીકાર કરવામાં આવ્યો છે.

જૈન ભોજનશાળા—જત્રાણુઓની સગવડ માટે કદંબગિરિમાં જૈન ભોજનશાળા કામ કરવામાં આવી છે.

જૈન આગમ મંદિર—રોહીશાળાના પહાડ ઉપર જૈન આગમ મંદિરની સ્થાપના કરવાની વાટાઘાટો ચાલુ હોવાના સમાચાર મળ્યા છે.

સમાધાન—બેઘપુર રાજ્યમાં જૈન મુનિરાજેની જે કનડગત થતી હતી તે અંગે પૂ. સુ. શ્રી. પુણ્યવિભજએ ઉપવાસ આરંભ પછી તેનું યોગ્ય સમાધાન થયું છે.

સખાવત—રોડ માણિકલાલ પ્રેમચંદે ક્ષયની હોસ્પીટલ માટે રૂ. દોઢ લાખની સખાવત કરી છે.

સર્વ ધર્મ પરિષદ—અ. હિ. સ. ધ. પ તા. ૧૯-૨૦-૨૭ એપ્રિલે ઈટાલમાં મળશે.

જૈન પાઠશાળા—શિવગંજમાં મુનિરાજેના અભ્યાસ માટે શ્રી. આત્માનંદ જૈન પાઠશાળાની સ્થાપના થઈ છે.

શંખેશ્વરમાં આગ—ચૈત્ર સુત્રી પાંચમે શંખેશ્વરમાં ઉજમણાના મંડપમાં એકાએક આગ થઈ હતી. પરિણામે છોડ તથા પુરતકોનો નાશ થયો છે.

સાહિત્ય પ્રચારક સમિતિ—આગરામાં સ્થાનનવાસી મુનિશ્રી રત્નચંદ્રજી (શતાવધાની) ના પ્રયાસથી અખિલ ભારતીય જૈન સાહિત્ય પ્રચારક સમિતિની સ્થાપના કરવામાં આવી છે.

સ્વી કા ર

સ્તોત્રમંજરી—કર્તા-મુનિમહારાજ શ્રી વાયપતિવિજયજી. પ્રકાશક શ્રી જૈનગ્રંથ પ્રકાશક સભા. પાંજરાપેળ. અમદાવાદ

Regd. No. B. 3801

તેયાર છે!

આજે જ મંગાવો!

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ
નીબીજા વર્ષની પૂરી ફાઈલ
જેમાંપરમાત્મા મહાવીર દેવના જીવનને લગતા
અનેક વિદ્વાત્કાર્ય લેખોથી સમૃદ્ધશ્રી મહાવીર નિર્વાણુ વિશેષાંક
નામના

૨૨૮ પાનાના દળદાર અંકનો સમાવેશ થાય છે.

ટપાલ ખર્ચ સાથે કિંમત:-

બાંધ્યા વગરના બધા અંકોના બે રૂપિયા
બધા અંકો સાથે બાંધેલાના અઠી રૂપિયા.

શ્રી મહાવીર નિર્વાણુ વિશેષાંકનું

છુટક મૂલ્ય:-

ટપાલ ખર્ચ સાથે માત્ર તેર આના.

લખો:-

શ્રી જૈનધર્મ સત્યપ્રકાશક સમિતિ

જેશિંગલાઈનો વાડી, ઘીકાંટા,

અમદાવાદ. (ગુજરાત)